दूसरी दुनिया का यथार्थ

(दलित कहानियां)

सम्पादन :

रमणिका गुप्ता

दूसरी दुनिया का यथार्थ

इतने दलित लेखकों की कहानियों का हिन्दी में यह प्रथम संकलन है। एक साथ इतनी कहानियां जुटाना काफी समय-लेवा और मशक्कत का काम था।

चूंकि अपने कार्य क्षेत्र में मैं स्वंय इन कहानियों के पात्रों जैसे सचमुच के पात्रों के बीच में कार्यरत हूँ, इसलिए ये कहानियां मुझे बिल्कुल आस-पास की, आम आदमी से जुड़ी, अपनी-सी लगीं। ये ऐसे लोगों की कहानियां है जो गरीबी के कारण तो सताए ही जाते हैं बल्कि इसलिए भी तिरस्कृत, बहिष्कृत और उपेक्षित किये जाते हैं क्योंकि वे किन्ही खास जतियों में जन्मे हैं।

मजदूर आन्दोलन, वह भी कोयला खदानों में काम करने वाले सबसे नीचे तबके के कोयला काटने वाले मलकट्टों और कामिनों के आन्दोलन से जुड़े रहने के कारण मैं उनके दैनन्दिन कार्यों में उनके साथ रह कर भागीदारी करती रही हूं, जो प्रायः अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा अत्यन्त पिछडी जातियों के मजदूर होते हैं। इसलिए जब उनके अपने ही मजदूर साथी धार्मिक अनुष्ठानों एवं भोज-भातों में उनसे भेदभाव बरतते हैं तो उनके भीतर पनपती एक हीन-भावना को झेलना ही, मैं सिर्फ देखती नहीं रही हूं बल्कि उसे समाप्त न कर पाने की विवशता-अक्षमता को भी सहती रही हूं। बढ़ा हुआ वेतन, शिक्षा, अधिकार व हक हासिल करने का सामूहिक सुख भी उन्हे सामाजिक स्तर पर आपसी बराबरी नहीं दिला सका। हां, इधर जब से इनकी राजनैतिक हिस्सेदारी और आरक्षण की बात चली है, तब से तनाव के साथ-साथ, शोषक जातियों में एक भय जरूर व्यापा है और शोषित जातियों में आत्माविश्वास जगने लगा है। पर यह जागृति अभी बहुत ही कम मात्रा में बहुत ही कम लोगों में आई है। इसमें भटकाव का भी खतरा है। न्याय और समानता की जगह बदले की भावना का भी अन्देशा है। उच्च जातियों की कुप्रथाओं की नकल करने का तो खतरा और भी बढ़

गया है । कि उच्च जातियों की बराबरी का अर्थ लोग तिलक-दहेज मांगना, औरतों पर बन्दिशें लगाना एवं अन्तर्जातीय विवाह का विरोध करना, जिसके कारण हेन्देगढ़ा जैसा घृणित कांड हजारीबाग में घटा— मानने लगे हैं ।

लेकिन यह जागृति ऊँट के मुहँ में जीरे के बराबर है । अभी करोड़ों लोग भाग्य की--कर्मों के फल की, पूर्व-जन्म के पापों की दुहाई दे कर अपमानित और तिरस्कृत हो कर भी सन्तुष्ट हो कर जी रहे हैं, उस मजदूर जमात के लोग भी—जो अपने आर्थिक हकों की लड़ाई के लिए कन्धे से कन्धा मिला कर मालिक के खिलाफ अड़ जाते हैं— सामाजिक स्तर पर, विशेषकर जातीय संदर्भ में कहीं दबा-दबा—कटा-कटा,हीन-हीन,घुटा-घुटा महसूस कर, चुप रह जाते हैं ।

नई पीढ़ी अवश्य अब राजनीति में नौकरियों में भागीदारी के नारे लेकर अति उत्साहित हो कर जुटने लगी है— पर उसकी अपनी जाति में जाति का मनुवादी बंटवारा फिर उनकी एकता में कहीं सेंध मार देता है और अधिकारी अभिजात वर्ग उन्हें मिलने वाली सुविधाओं से वंचित रखने में कामयाब हो जाता है ।

'दूसरी दुनिया का यथार्थ' उनका यथार्थ है जो मनुष्य-योनि नहीं प्रत्युत पशु-योनि के काबिल समझे जाते रहे हैं—और अभी भी लगभग वैसी ही स्थिति है । इस धारणा पर शास्त्रों की मोहर तो लगी ही है, इसे स्वयं वह जमात भी मन से स्वीकारे हुए है । इस सदी में एक तरफ डा० अम्बेदकर द्वारा इस धारणा को तोड़ कर उनकी हीन-भावना को समाप्त करने की चेष्टा शुरु हुई, तो दूसरी तरफ वामपंथी जनवादी शक्तियों द्वारा उनके वर्ग-संघर्ष की धार पैनी कर, उन्हे हकों का अहसास करा गया । स्वतंत्रता आन्दोलन में भी गांधी के 'अछूतोद्धार' अभियान ने इनकी तरफ पहली बार ध्यान खींचा लेकिन वह अछूतोद्धार इन्हे वर्ण व्यवस्था में रखते हुए इनकी तरफदारी करता था । उनके लिए बराबरी के दर्जे की बात नहीं, बल्कि दया की, सहानुभूति की याचना करता था । सहानुभूति, दया उनका मुद्दा था इनका, हक नहीं ।

अम्बेदकर और वामपंथी विचारधारा वास्तव में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । लेकिन दुर्भाग्यवश ये दोनों संघर्ष साथ-साथ चलने की बजाय एक दूसरे की खिलाफत तक करते देखे गये ।

अब इधर आ कर वामपंथियों ने भी बाबा साहब के इस विश्लेषण को स्वीकारा है कि दलित की प्रतिष्ठा-सम्मान की लड़ाई लड़ना, भारतीय

परीस्थितियों में जरूरी है, केवल आर्थिक लड़ाई से इनके सामाजिक-स्तर पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है ।

ये कहानियां सामाजिक बदलाव को लाने का आह्वान करती कहानियां हैं । इन कहानियों में आक्रोश है, आग है, लावा है, गुस्सा है तो साथ-साथ संवेदना, मानवीयता और सब्र भी है, न्याय की उत्कट लालसा है, समानता की तीव्र ललक है, भाईचारे की भावना है, तो आदर पाने की इच्छा भी बलवती है । भले कुछ एक कहानियों में बदले की भावना है—जैसे 'शर्त' कहानी में । लेकिन लेखक ने उसे 'चमत्कार' की शैली में बदल कर प्राकृतिक न्याय का रुप दे दिया है । इससे 'बदले' की बात हलकी पड़ गयी । दलित साहित्यकार शोषक का स्थान लेने की कल्पना नहीं करते । 'शर्त' में ऐसी एक 'शर्त' रखी गयी जो उचित नहीं —न हो सकती है । लेकिन यह शर्त कौन रख रहा है—इसे भी देखना होगा । यह एक ऐसा व्यक्ति रख रहा है जो समाज में ऐसी ही व्यवस्था में जीता है जहां हर रोज ऐसी ही शर्तों को सक्षम लोगों द्वारा बलजबरी पूरा किया जाता देखा जाता है । पंजाब में एक घटना ठीक ऐसी ही घटी थी जब सचमुच गांववालों ने लगभग सर्वसम्मत फैसला दिया था कि जिसके पुत्र ने बलात्कार किया है उसकी निर्दोष बेटी के साथ—बलात्कारित लड़की का भाई बालत्कार करे । यह भारतीय सवर्ण-मानसिकता का निर्णय था, जिससे गांव के सवर्ण-असवर्ण दोनों सहमत थे । सी० पी० एम० के कार्यकर्त्ताओं ने इसका कड़ा विरोध किया—तब ये फैसला रूका । महिलाओं के संदर्भ में ऐसी – बर्बर मानसिकता भारत में ही नहीं दुनिया भर में व्याप्त है । इसीलिए जब कहीं दंगे - फसाद होते हैं तो वही अड़ोसी-पड़ोसी जो एक दूसरे की बहन-बेटियों को बेटी, बहन, दीदी कहते नहीं थकते, उनकी इज्जत लूटने में आगे रहते हैं । आखिर यह दरिन्दगी आई कहां से ? क्या यह धार्मिक कट्टरता की देन नहीं है? चाहे हिन्दुत्व हो या इस्लाम या इसाई, सभी धर्मों में ऐसा होता रहा है ।

इसलिए ऐसी 'शर्त' जो उस बलात्कारित लड़की का बाप रखता है, वह दलित होने के नाते नहीं— बल्कि उसी मनुवादी, धार्मिक कठमुल्लेपन के नाते रखता है जिसमें औरत को दलित से भी कम दर्जा दिया गया है । इसके साथ-साथ वहां विश्वव्यापी पुरूष दंभ भी प्रभावी है । पुरूष दलित हो या अभिजात-सवर्ण-औरत के प्रति दोनों का रवैया एक ही जैसा है । चूंकि दोनों का समाज पितृ-प्रधान है जिसमें औरत की इज्जत लूट कर दुश्मन से बदला लिया जाता है । दोषी पुरूष दण्ड नहीं पाता—, दण्ड उसकी औरतें भुगतती हैं ।

दरअसल जब सदियों से संतापित व्यक्ति अभिव्यक्ति की शक्ति पाता है—या संगठन का बल महसूस करता है तो पहली प्रतिक्रिया उस जुल्म के खिलाफ गुस्से का इजहार ही हो सकती है। बदले की भावना भी संभव है—घृणा होना भी स्वभाविक एवं अनिवार्य प्रतिक्रिया होती है। धीरे-धीरे गुस्सा कम होता है-तो सन्तुलन आता है और न्याय की लड़ाई व्यक्ति से हट कर व्यापक और सामूहिक बनने लगती है। विचार का विकास हो या संघर्ष का, दोनों की विकास-प्रक्रिया समान ही होती है। कहानीकार हो या कवि या नाटककार अथवा साहित्य की कोई भी विधा का लेखक—सभी को इस विकास-प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इसलिए इस पुस्तक की कहानियों में विकास-प्रक्रिया के विभिन्न स्तर, रुप और रस मिलेंगे। गुस्से से लेकर घृणा से गुजरता हुआ, बदले की भावना तक पहुँचा है लेखक, लेकिन उचित-अनुचित का ध्यान उसे तब भी रहता है। इसीलिए 'शर्त' में 'चमत्कार' द्वारा बदला लेता है लेखक। भले यह स्वाभाविक न लगे लेकिन लेखक की मंशा सचमुच में बदला लेने की नहीं लगती अन्यथा वह अन्त को चमत्कार से समाप्त नहीं करता। ऐसे यह चमत्कार भी उसी परम्परावादी सोच का नतीजा है जहाँ जो न हो सकता हो, या किये जाने लायक न हो, उसे चमत्कार के रूप में दिखा दिया जाता है। इससे इस कहानी का अन्त कुछ हलका जरुर हो जाता है। दूसरी तरफ इन कहानियों में संगठित हो कर गलीज बर्बर परम्पराएं हों या जमींदार व पुलिस का जुल्म-या अधिकारियों का पक्षपातपूर्ण साजिश भरा रुख-सब के खिलाफ लड़ने का संकल्प है। कहीं-कहीं तो पात्र स्वयं भी दोषी को दन्डित करने की क्षमता हासिल करने के स्तर तक पहुँच गये हैं।

जिस तरह सवर्ण साहित्यकारों या शास्त्र रचयिताओं ने अपने साहित्य और शास्त्रों तक में एक साजिश के तहत विकृत ढंग की संस्कृति की संहिता का निर्माण कर दलितों-पिछड़ों को पढ़ने-लिखने से वंचित करके, गरीब रखने से लेकर भेदभाव-पूर्ण ढंग से उन्हे दण्डित करने के; पशुवत जीवन जीने के विधान रचे और उस नारकीय जीवन को सच्चा बता कर उनकी संवेदना को कुन्द कर दिया या नष्ट कर दिया, उन्हे धार्मिक अनुष्ठानों से बहिष्कृत तो कर ही दिया, साथ ही धार्मिक कथाओं में चमत्कार और बे-सिर-पैर के अन्धविश्वासों पर आधारित कथाएं गढ़ कर उन्हे भयभीत भी किया—उसी प्रकार का साहित्य दलित साहित्यकार लिखना नहीं चाहते। न वे लिख रहे हैं। वे तो केवल उन झूठों को जिन्हे गौरवान्वित कर उन पर थोपा गया है, को

नकार रहे हैं। वे कोई मिथक भी नहीं गढ़ रहे। वे तो भाग्य,भगवान, आस्था अवतार, चमत्कार, अन्धविश्वास, रुढ़ि, विकृत-परम्परा, हिन्दुत्ववादी, मनुवादी जो कुछ लोगों के ऐश्वर्य के लिए बनी, संस्कृति के बदले—समानता, भाईचारा आजादी की न्याय-परक समाजिक व्यवस्था को लाना चाहते हैं—जिसमें जाति का अस्तित्व ही न हो। पर ये सब तो सवर्णों को करना होगा ना, तब सब मिटेगा: चूंकि जाति के जन्मदाता—पोषक—रक्षक वही हैं। दलित सहित्यकार तो बाबा साहब के 'शिक्षा - संघर्ष और संगठन एवं-'अप्पदीपो-भव:' के सिद्धान्त पर आधारित रचनाएं लिख रहे हैं। आत्मकथाएं जो जीवन के अत्यन्त नजदीक और सबसे अधिक विश्वसनीय होती हैं लिख कर वे अपनी शर्म—अपनी पीड़ा को सामाज से जोड़ कर, उन्हे मिटाने के प्रयास में हैं। वे इस कोशिश में हैं कि वह उदार सवर्ण-वर्ग भी न्याय की लड़ाई में उनके साथ आए जिसके पूर्वजों ने ये गुनाह किये। कम से कम वे अपने पुरखों के गुनाहों को स्वीकार कर एक साझे भविष्य का निर्माण करें।

लेखन में गाली के औचित्यको स्वीकारा नहीं जा सकता। लेकिन पात्रों के स्तर, परिस्थिति की यदि मांग हो तो गाली भी अनुचित नहीं होगी। सवर्णों को चिढ़ाने के लिए गाली दिया जाना गलत है लेकिन कथा के प्रसंग में उसकी जरुरत हो तो वह जरूरी भी हो सकती है। पाश जैसे प्रगतिशील जनवादी कवि की कविताओं में भी गालियां मिलती हैं तो ओमप्रकाश बाल्मीकि यदि हजारों वर्षो के शोषण को याद कर जातिप्रथा को गाली दें, तो प्रश्न क्यों उठाया जाता है?

ऐसे दो गलतियां मिल कर एक सही कदम नहीं हो सकतीं, लेकिन जिसकी जाति को ही गालीवाचक बना दिया गया हो और युगों से जो गाली से ही पुकारा जाता रहा हो, यदि आज वह कुछ बोलता है—गाली ही दे कर सही तो इतना बुरा क्यों लगता है? सदियों से वह सवर्णों की इस गाली देने की बुरी आदत को सहता रहा है। आज एक दशक भी नहीं बीता अभि जब दलित गाली देने लगे हैं—तो कितना अखरता है? कम से कम यह सोच कर भी सवर्णों को अब उन्हे गाली देना बन्द करना चाहिये और उनकी उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिये। ऐसे समय इन्तजार नहीं करता—। संख्या-बल उनके पास है ही, बुद्धि-बल भी वे जुटा रहे हैं। तब अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग को उस वर्ग के बल पर मिलने वाली सुविधाएं छिन जाएंगी—यह सोच कर भी सवर्णों को अपना रवैया बदलना चाहिये।

इसलिए दलित साहित्य की कहानी हो या कविता या नाटक वा लेख, उसे जानने के लिए सवर्णों को नयी दृष्टि अपनानी होगी। ये बौखलाए हुए आदमी की कहानियां नहीं हैं, उस सताए हुए समाज की कहानियां हैं जो मनुष्यता का दावा करना सीख गया है और बराबरी का हक माँग रहा है। दूसरी दुनिया के यथार्थ को वह अपनी नियति मानने को तैय्यार नहीं है अब।—वह मूलधारा में मनुष्यत्व में—मानव-श्रेणी में आने के लिए कटिबद्ध है। उसके लिए धर्म-भगवान-भाग्य-परम्पराए—रूढ़ियां - अन्धविश्वास, सब निरर्थक हैं। वह इन सबके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है—चूंकि Condemn किये बिना इन्हे नष्ट करना संभव नहीं। इन्हें नष्ट किये बिना नये मूल्य बन नहीं सकते और न ही उनसे उसकी मुक्ति संभव है।

हमारी संस्कृति में बहुत कुछ अच्छाइयां हो सकती हैं-हैं भी। लेकिन ये अच्छाइयां केवल एक अल्पसंख्यक वर्ग की संस्कृति के हितों तक सीमित थीं। उन्हीं की गौरव गाथाएं थीं। वह संस्कृति पूरे समाज के हित के लिए नहीं थी। वे केवल अपने व अपने वर्ग की सुविधाओं को बरकरार रखने के लिए त्याग, बलिदान और शौर्य का प्रदर्शन करते थे। जन-कल्याण उसकी अपनी जाति या समाज तक ही सीमित था। असंख्य लोग उनके दायरे से बाहर यूं ही नहीं थे-बल्कि एक साजिश के तहत रखे गये थे ताकि उनकी सेवा करते रहे। ये असंख्य लोग दूसरी दुनियां के लोग थे जिनकी दुनियां इन सवर्णो की दुनिया से भिन्न थी और सभी अधिकारों से वंचित। आज इसी "दूसरी दुनियां का यथार्थ" हकीकत पहचान गया है, और वह सब कुछ पुराने को, जो उनके विनाश का कारण था, जो सवर्णो के ऐश्वर्य का स्रोत था, जो अपनी कायरता और छल कपट को भी गौरवान्वित करता था, को इसलिए नष्ट कर देना चाहते हैं कि जब तक वह झूठ गौरवान्वित होता रहेगा तब तक इनके मेहनतकश, देश-निर्माता, उत्पादककर्त्ता सच को, यथार्थ को प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती।

जब तक ब्राह्मण मनुवाद के अनुसार ब्रह्मा केमुख से, क्षत्रिय बाहों से उत्पन्न माने जाते रहेंगे तब तक शूद्रों को पांव से उत्पन्न माना जाता रहेगा। इसलिए उस कारण को ही मिटाना होगा जो इस धारणा का जन्मदाता है। धारणाएं जल्दी नहीं बदलती हैं। उनकी उत्पत्ति का स्रोत नष्ट कर उन्हें मारा जा सकता है। यानी कि वे शास्त्र--जो इन्हें पशु कहते हैं को अविश्वसनीय बना कर-नष्ट किये बिना वर्ण के कटघरे से दलितों को निजात दिलाना संभव नहीं।

'दूसरी दुनियां के यथार्थ' की कहानियां सदियों के खिलाफ आवाज ही नहीं उठातीं बल्कि कुछ सवाल भी पूछती हैं। एक गौरवशाली समृद्ध कही जाने वाली संस्कृति की शोषण-परक, एकपक्षीय, अल्पसंख्यक वर्ग की सुख सुविधा के लिए एक विशाल जन समूह को 'दास' से भी नीचे, पशुवत जीवन में सुखी महसूस करवाने वाली षड़यन्त्रकारी आचार-संहिता को न मान—उसे बेनकाब कर तोड़ समानता, भाईचारे और आजादी की नई संहिता बनाने की, अपने को मनुष्य मानने की, शिक्षित संगठित कर सामाजिक न्याय और बदलाव का झण्डा बुलन्द करने की ओर बढ़ती ये कहानियां हैं।

एक विशाल जन-समूह को — जड़, असंवेदनशील बना दिया गया। जीवन की जरूरतों के प्रति — जीवन के प्रति भी —। वह दूसरे जन्म की—पिछले व अगले जन्म की ही सोच रहा है सदियों से—इस जन्म को तो वह प्रायश्चित मान कर जीता है। उसकी वेदना—पीड़ा--उसके साथ किये गये अमानुषिक बर्बर व्यवहार—सबके प्रति सदियों से वह स्वंय असंवेदनशील रहा—नियति मान कर सहता रहा—प्रेमचन्द का घीसू-माधव बना दिया गया उसे। इन कहानियों में घीसू-माधव घीसू-माधव, नहीं रहा वह माधो, राधो, राजु, मुकुन्द, सहदेव यादव, सिलिया, सुनीता, नत्थू, शान्ती, सुक्खु, रमिया, छमिया, हरिया, सम्पत,सुदीप आदि के रुप में ही नहीं बल्कि एक पूरी जमात के रूप में उठ खड़ा हुआ है। सदियों से चली आ रही बहु-जुठाई की प्रथा हो या कर्ज में गलत हिसाब कर ठगने की, पुश्तैनी पेशों में शोषित रखने की साजिश हो या गांव में जीने के रास्ते बन्द करने का षडहन्त्र अथवा जमींदार और पुलिस का जुल्म - वह अब घोसू-माधव की तरह कफन बेच कर दारू नहीं पी जाता—वह इन सब के खिलाफ लड़ने को खड़ा हो जाता है।

इन कहानियों में सुदीप जो बचपन से पच्चीस चौका डेढ सौ सुनता आया था अपने पिता से पढ़-लिख कर वह अपने पिता को समझाने में कामयाब हो जाता है कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं होते हैं-। तब सदियो का विश्वास टूट कर कहता है-'तेरे कीड़े पड़ेंगे चौधरी—कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा'। (ओम प्रकाश बाल्मीकि) दूसरी दुनिया का बूढ़ा यथार्थ भी उठ खड़ा होता है झूठ से मुकाबिला करने के लिए। अस्सी बरस का हरिया अपसी बहू कबूतरी को जमींदार-पुत्र द्वारा नग्न घुमाये जाना से सन्न तो हो जाता है लेकिन पथराता नहीं। भाग्य में लिखा मान कर भी चुप नहीं बैठता। बेटे को शहर से बुलाया जाता है।

लोगों को थाने भेजा जाता है। पुनः थाने का जुल्म झेलते हुए भाई और बेटे को देखता है—पर फिर भी हारता नहीं हरिया ! बिरादरी की पंचायत बैठती है औरतें भी शामिल हैं–' उनकी बियरबानी (औरत) को भी वैसे ही नंगा करके घुमाएं'–इस प्रस्ताव को हरिया रोक देता है यह कह कर–'हमरी और उनकी बियरबानी क्या अलग-अलग हैं ?' विवेक नहीं गवांता हरिया ! 'फसल जला दो' एक आवाज आई।–'अन्न को भी कोई तबाह करता है ?' अन्न-उत्पादक बात काट देता है। हरिया अस्सी बरस की उमर में 'नया गांव' बसाने का दम रखता है। प्रेमचन्द के घीसू-माधव की तरह कफन बेच दारु पीने वाली जमात् अब हरिया का रुप ले रही है। बूढ़े जिस्म से विद्रोह की भाषा उभर रही है। दूसरी दुनिया के लोगों को सचमुच एहसास होने लगा है कि वे गुलाम हैं—इसलिए वे अब गुलाम न रहने का संकल्प लेने लगे हैं। (मोहन दास नैमिशराय)

बेटे को पढ़ाने के जुर्म में गांव के सवर्ण सुक्खा का बाहिष्कार कर देते हैं पर सुक्खा हारता नहीं। उसमें स्वाभिमान जग चुका है। दूसरी दुनिया जिसका यथार्थ हीनभावना, दब्बुपन, झुक कर चलना, सलाम दागते रहना, भाग्य के सहारे जीना, जीवन भर बंधुवा बने रहने पर भी सन्तुष्ट रहना है, इन कहानियों में वह यथार्थ अब जिन्दगी के रास्ते खोलने लगा है–स्वाभिमान पालने लगा है—'वह भूखा प्राण तज देने को तैय्यार है पर बेटे को नरक देने को नहीं।'

(जय प्रकाश कर्दम)

बाप-बेटा मिल कर किसी दलित लड़की को अपनी हवस का शिकार बना, उसके गर्भ में बीज डाल कर निश्चित हो कर बैठ जाते हैं, यही दूसरी दुनिया का यथार्थ है। 'नन्दकेशरी' बनी कई महिलाएं जमींदारों की राह अगोरती रहती हैं—जिन्दा रहने के लिए। माँ-बेटी साझा रुप में बारी-बारी बाप-बेटों के लिए बिछती रहती हैं। उनका बाप चूंकि जमींदारों के यहाँ बंधुआ मजदूर होता है, वह यह सब आंखों से देखकर भी चुप रहने को मजबूर है। गांव का जमींदार जवाहर सिंह जिसकी नंदकेशरी रखैल थी, उसकी बेटी लाजो पर भी डोरे डालने लगा। साथ ही जवाहर सिंह का बेटा दशरथ भी लाजो पर मुग्ध हो गया। बाप-बेटा दोनों का मिश्रित बीज कुआंरी लाजो के गर्भ से पैदा हुआ तो दोनों बच्चे का बाप बनने से नट गये। पर नन्द-केशरी चुप नहीं बैठती। वह बच्चे को उठा कर जवाहर के घर, उसके बैठकी में जा पहुँची—जहाँ बाप-बेटा दोनों गांव के कई लोगों के साथ बैठे थे। सब के सामने सीना तान कर खड़ी हो गई नन्दकेसरी—और बच्चे को उनके गोड़ (पाँव में)

रख कर बोली—जान से मार दे लेकिन ई बेटा स्वीकारे ही पड़ेगा बाबू साहेब ! आउर कि एकरा (इसे) नाली–नाला में फेंक दे चाहे पोसें–पाले।' नन्दकेसरी अकेली लोक–लाज क्यों झेले ? वह भी हराम की पहचान कर झेलें जो इसके जिम्मेवार हैं—यह कहने की हिम्मत आ रही है नन्दकेसरियों में।

(बिपिन बिहारी)

ऐसे ही एक सवर्ण श्री सेठी को पढ़ी-लिखी मैट्रिक पास शूद्र लड़की से विवाह करने के प्रस्ताव को ठुकराने का साहस 'सिलिया' में आ गया है चूंकि वह किसी की दया पर जीना नहीं चाहती। अपने स्वाभिमान के साथ जीना चाहती है। उसकी स्मृति में बचपन से जवानी तक वे सभी संदर्भ बाईस्कोप से घूम जाते हैं—जहाँ उसे और उसके समाज को सवर्णों ने अपमानित किया—उसकी जाति जान जाने पर, पढ़ी–लिखी, अच्छी खिलाड़ी होने पर भी—तुरन्त उसके प्रति उनका रुख बदल गया ! व्यवहार बदल गया ! कैसे सिलिया उनके घर एक अछूत बन कर अमीरी में रहना स्वीकार करे–जबकि उसका पूरा समाज वहीं है–जहाँ सदियों पहले था ? वह अपने यथार्थ से कट कर अकेले अपनी उस दूसरी दुनियां को छोड़ने को तैय्यार नहीं—। वह पढ़ेगी स्वाभिमान के साथ पूरे समाज को ले कर जाएगी नई दुनियां में (सुशीला टाकभौरे)

यह संकल्प दूसरी दुनियां के सदियों के यथार्थ को बदलने के लिए लिया जा रहा है जगह-जगह, हर–जगह। भले हर मन में नहीं—पर एक जमात छोटी ही सही—प्रतिबद्ध हो कर खड़ी हो रही है। यही इन कहानियों की ताकत है।

कावेरी की 'सुमंगली' दुःख भरी गाथा है—लेकिन पढ़ने वालों के मन में दुःख देने वाले के लिए घृणा और क्रोध पैदा करती है। यही उसकी सफलता है।

रजत रानी मीनू की सुनीता' आत्म विश्वास से भरीपूरी, जरा बड़बोली लड़की की कहानी है–जो धुन की पक्की है। वह सब विरोधों के बावजूद अपना रास्ता खुद बनाती चलती है। अपने पिता को भी उसकी गलती का अहसास कराने से नहीं चूकती। पिता जो दलित हीन-भावना और पुरुष-दम्भ दोनों का प्रतिनिधित्व करता है––भी सुनीता की सफलता पर अपना रवैया बदलता है (जो सभी पुरुषों का स्वभाव होता है)। इस कहानी में पिता जड़ परंपरा है, और सुनीता गतिशीलता की प्रतीक। जड़ता को झकझोरना जरूरी होता है नहीं तो बढ़ते कदमों के बंधने का खतरा हो जाता है। पिता-माँ-भाई और समाज एवं लोक-लाज के दबाव, लिहाज और आतंक के कारण ही तो औरत गुलामी सहती है। सुनीता उस लिहाज के दबाव को नकारती हीं

नहीं--झटके से उसे तोड़ती भी है। यह औरतों के लिए जरूरी है। इसलिए इस कहानी का शिल्प कमजोर और सपाट होने पर भी प्रेरणादायक है — खास कर महिलाओं के लिए। ऐसे यह कहानी और अच्छी बन सकती थी। सुशीला टाकभौरे की सिलिया अन्तर्मुखी है तो रजतरानी मीनू की सुनीता बहिर्मुखी। यही दोनों के चरित्र का अन्तर है। सुनीता जो सोचती है उसे बोलती भी है—उसके लिए डट कर मुकाबला भी करती है—अपनी बात मनवाने की धुन और जिद दोनों है उसमें। नेतृत्व का गुण है। वह अवसर की ताक में समय पर चुप रहना भी जानती है। सब सुनती है पर करती अपने मन की है। सिलिया में भी जिद है। पर वह एक ही बार निर्णय लेती है— और फैसला करवा लेती है। सिलिया नम्र है। वह परम्परा को मोड़ती हैं अपने पक्ष में—यानि अपनी माँ को भी। माँ का सपना बदला लेने का है कि वह भी सवर्णों को अपने घर में नौकर रखेगी, लेकिन सिलिया की यह सोच नहीं है। जिन्हें सिलिया बदलना चाहती है वह जड़ परम्पराएं और उन पर आधारित लोग हैं। वह नेता कम समाज सुधारक अधिक है।

आज नत्थू और शान्ता अपनी जमात को पुश्तैनी धंधों में बरकरार रखने की साजिश के खिलाफ उठ रहे हैं—। वे अपना हित समझ रहे हैं —। अब वे सूअर पालन नहीं, गाड़ी का कर्ज मांगने लगे हैं। (सूरज पाल चौहान)

ये बात सही है कि दलित समाज की स्थिति में बदलाव लाने के लिए ये प्रयास अभी ऊँट के मुँह में जीरा के समान हैं। इन्हे जमात् बन कर उठना होगा और दूसरों को भी साथ लेना होगा।

हमने कोशिश की है कि अधिक से अधिक हिन्दी दलित लेखकों को एक मंच पर लाएं। संभवतः हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है जब उनतीस लेखक एक साथ छपे हों। इस प्रयास में डा० मैनेजर पाण्डे और नागेश्वर लालजी के हम आभारी है जिन्होंने घंटों समय और धैर्य दे कर कहानियों को मुझ से सुना। हम आभारी है साथी दयानन्द बटोही, डॉ० एन० सिंह, श्योराज सिंह बेचैन, मोहन नेमिशराय और डॉ० विमल-कीर्ति के जिन्होने सम्पर्क सूत्र दिये। अजय वर्मा जी ने प्रूफ में मदद की जिसे भुलाया नहीं जा सकता। हम आभारी हैं हंस के भारत भारद्वाज जी के जिनके 'समकालीन सृजन' में कहानी अंक की चर्चा पढ़ कर हमारे ग्राहक और प्रशंसक एवं लेखक बढ़े। ऐसे 'हंस' के हम एक और कारण से भी आभारी है—उन्होंने जो दो कहानियां लौटाई – उन्ही पर सबसे अधिक प्रशंसात्मक प्रतिक्रियाएं मिली।

कमलेश्वर जी को किन शब्दों में धन्यवाद दिया जाय ? उन्होंने इतनी व्यस्तता के बावजूद सभी कहनियां पढ़ कर भूमिका लिखी और दलित लेखन की दिशा स्पष्ट की।

□ डॉ० एन० सिंह

चिंगारी को अलाव में बदलने का प्रयास

हिन्दी में पहली कहानी कब और किसने लिखी। इस पर विवाद हो सकता है। लेकिन यह निर्विवाद है कि कहानी का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ ही हुआ है। कहानी सुनने की परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मनुष्य के जैविकीय विकास की कथा। लेकिन हिन्दी की पहली कहानी 1900 के बाद ही प्रकाशित हुई 'सरस्वती' में। यह युग हिन्दी कहानी के विकास का प्रारम्भिक काल है। यह युग ऐसा है, जिसमें दलितों का विद्रोह धीरे-धीरे सुलगता हुआ समाजिक धरातल तक आ पहुंचा था। एक तो स्वतंत्रता आंदोलन के क्षितिज पर महात्मा गांधी का उदय हो चुका था, जिन्होंने पहली बार समझा था कि यह लड़ाई किसी एक वर्ग या जाति के लड़ने से नहीं जीती जा सकती। इसमें सभी धर्मों, जातियों और वर्गों ने सहयोग दिया। जिनमें अछूत भी थे। तभी अपनी विस्फोटक विद्रोही चेतना लेकर डॉ० अम्बेडकर भी भारत के राजनीतिक फलक पर अपनी उपस्थित दर्ज कराने के लिए आ पहुंचे थे जो केवल भारत की आजादी ही नहीं चाहते थे, बल्कि अछूतों की हिन्दू धर्म से मुक्ति भी चाहते थे। अम्बेदकर कहीं अपने मिशन में सफल न हो जाएं अतः गांधी जी ने कांग्रेस के अन्दर ही 'अछूतोद्धार' कार्यक्रम प्रारम्भ किया। जिसके कारण एक प्रकार की गांधीवादी सहानुभूति हिन्दुओं में अछूतों के प्रति देखने को मिलने लगी थी। हिन्दी के प्रारम्भिक युग के कुछ कथाकारों की कहानियों में यही सहानुभूति देखने को मिलती है। खासतौर पर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और यशपाल की कहानियों में। 'निराला' की दो लम्बी कहानियों या लघु उपन्यसों, 'चतुरी चमार' और बिल्लेसुर बकरिहा' को हम ले सकते हैं। जहां तक यशपाल का प्रश्न है, सन् 1936 के आस-पास हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिशील विचारधारा' का प्रवेश हो चुका था। जिसके कारण शोषित, स्त्री और मजदूरों के प्रति सहानुभूति प्रगट करती हुई रचनाएं लिखी गईं। अतः यशपाल की कहानियों में भूख, गरीबी, शोषण का अत्यन्त दारुण चित्रण हुआ है। मूलरूप में यही दलित चेतना है। उनकी 'परदा' जैसी कहानी इसी का प्रतिनिधित्व करती है।

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द का पदार्पण एक अभूतपूर्व घटना है। पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है कि प्रेमचन्द अपने समय के एकमात्र ऐसे साहित्यकार थे, जिनके कारण हिन्दी साहित्य देश की सीमाएं लांघकर विदेशों तक पहुंचा। और यह सच भी है। क्योंकि प्रेमचन्द साहित्य का अनुवाद दुनियां की लगभग हर भाषा में हो चुका है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद ही ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने पहली बार भारतीय (हिन्दू) समाज में नरक भोगते दलित को अपनी कहानियों का विषय बनाया, उसकी सम्पूर्ण यातनाओं के साथ।

भारतीय समाज में अछूतों और सवर्णों की स्थिति के दो उदाहरण डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'इनहिलेशन ऑफ कास्ट' में दिया है। इनमें से पहला विवरण शिमला पहाड़ की किसी देशी रियासत का है। हरिजनों ने अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए 'हरिजन सेवक' (सम्पादक–महात्मा गांधी) में संपादक के नाम पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था कि :—

1. जब किसी ऊंची जाति के हिन्दू का कोई डंगर मर जाता है, तो डंगर का मालिक खुद उसे छूने में छूत मानता है और हरिजनों को उसे ले जाकर गाड़ना पड़ता है।

2. कोई ब्राह्मण किसी हरिजन के यहां सत्यनारायण की कथा कहने या कोई यज्ञ कराने नहीं आता।

3. किसी ऊंची जाति के लिए किसी हरिजन की स्त्री या लड़की को जबरदस्ती ले जाना कोई जुर्म या दोष नहीं माना जाता।

4. कोई हरिजन हिन्दू तरीके से कन्यादान करके अपनी लड़की की शादी नहीं कर सकता।

5. सरकारी अफसरों के दौरे के वक्त दूध, लकड़ी, घास और हर तरह की बेगार हरिजनों से ली जाती है। ऊंची जाति वालों से ये चीजें नहीं ली जाती। इन चीजों की कीमत अगर कोई अफसर देता भी है तो, वह नम्बरदार वगैरह ले लेते हैं, हरिजनों को नहीं मिलती।

6. ऊंची जाति वालों की तुलना में उतनी ही जमीन की मालगुजारी हरिजनों से दुगनी ली जाती है। इस पर हरिजनों का जमीन का मौरुसी हकदार नहीं माना जाता।

7. जो हरिजन इस तरह के अत्याचारों पर एतराज करते हैं, उन पर झूठे मुकदमे चलाए जाते हैं।

8. रियासतों के प्रजामण्डलों में ऊंची जाति वाले लोग हरिजनों को प्रजामण्डल के मेम्बर नहीं बनने देते। और अगर बनने भी देते हैं तो उन्हें चुनाव वगैरह में बराबरी का हक नहीं देते।

दूसरा विवरण इन्दौर रियासत के 15 गाँव के सवर्णों का है जिन्होंने वहां के अस्पृश्यों को निम्नलिखित आज्ञाओं का पालन करने को कहा था, अन्यथा गांव छोड़कर चले जाने की धमकी दी थी–

1. कोई पुरुष सुनहरी किनारी की पगड़ी न लगाये, रंगीन किनारी की धोती न पहने।

2. किसी हिन्दू के मर जाने पर उसके रिश्तेदारों को खबर दें, भले ही वह दूर क्यों न रहता हो।

3. हिन्दुओं के शादी-ब्याह में बाजा बजावें।

4. अछूतों की औरतें सोने-चाँदी के गहने तथा फैन्सी लहंगा और जाकेट न पहने।

5. हिन्दू औरतों को बच्चा पैदा होने के समय वे दाई का काम करें।

6. अछूतों को चाहिए कि वे बिना वेतन हिन्दुओं के यहां नौकरी करें और जो उन्हें खुश होकर दे दिया जाए, उसे स्वीकार कर लें।

प्रेमचन्द की कहानियों में शूद्रों और सवर्णों की इन सभी प्रकार की मानसिक और सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है। 'ठाकुर का कुआं' उनकी दलित चेतना की सर्वोत्कृष्ट कहानी है। इस कहानी का मूल स्वर यह है कि इन्सान होने की हैसियत से जीने के लिए हरिजन का प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं पर अधिकार नहीं है। स्वच्छ हवा और पानी जिस पर किसी भी व्यक्ति का निजी स्वामित्व नहीं है उसे भी वह अपनी मर्जी से नहीं पा सकता। समाज में अलग-अलग जातियों के अलग-अलग कुंए हैं। किन्तु हरिजनों को छोड़कर सवर्णों के कुंए से शेष सभी पानी निकाल सकते हैं। हरिजन मात्र हरिजनों के लिए बने कुंए से पानी निकाल सकते हैं। 'ठाकुर का कुआं' का पात्र जोखू बीमार है। हरिजनों के कुंए में कोई जीव गिर कर मर गया है! पानी सड़ गया है। सड़ा पानी पीने से जोखू मर भी सकता है। जोखू की पत्नी गंगी दूसरे कुंए से पानी लाकर जोखू को पिलाना चाहती है। किन्तु जोखू सवर्णों के रवैये को जानता है और गंगी को ऐसा न करने के लिए कहता है। 'हाथ पांव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे,

ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू एक से चार लेंगे। गरीबों का दुःख दर्द कौन समझता है? हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुंए से पानी भरने देंगे ?"

जोखू के इस कथन की गंगी पर जबरदस्त प्रतिक्रिया होती है और वह बोल उठती है, 'क्यों'। उसका-विद्रोही दिल रिवाजों-पाबंदियों पर चोट करने लगता है। "हम क्यों नीच हैं और ये क्यों ऊंचे हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं। यहां तो जितने हैं, एक से एक छटे हैं। चोरी ये करें, जाल फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इसी ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मार कर खा गया था। इन्हीं पण्डित जी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है।

किसी हरिजन महिला के मुंह से इस तरह की बातें सुन कर और ठाकुर के कुंए से पानी निकालने की हिम्मत देखकर किसी का भी मन प्रसन्न हो सकता है। लेकिन जैसे ही इन पंक्तियों पर दृष्टि पड़ती है तो मन हरिजनों के प्रति हो रहे अत्याचार के प्रति विद्रोह कर उठता है—'जब मैदान किसी तरह खाली होता है और गंगी पानी खींचती है 'तभी ठाकुर का दरवाजा खुलता है। शेर का मुंह भी शायद इतना भयानक न होगा। गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है और वह भागती हुई घर पहुंचती है, देखती है कि जोखू लोटा मुंह को लगाये वही गन्दा पानी पी रहा है।' प्रेमचन्द की यही कहानी हिन्दू समाज में दलित जीवन के अर्न्तविरोधों एवं अन्तर्सम्बन्धों को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करती है।

वस्तुतः अछूत भावना या अस्पृश्यता मुख्यतः तीन रुढ़िवादी मान्यताओं पर आधारित है-'खान-पान सम्बन्धी नियम, शादी का सम्बन्ध तथा धार्मिक उत्सव। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर की बात है, उसके छूने मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते हैं। मन्दिर प्रवेश तथा तथा धार्मिक उत्सवों में अछूत का सहयोग तो दूर, वह मन्दिर में रखी हुई मूर्ति का दर्शन भी नहीं कर सकता है। प्रेमचन्द ने इन तीनों रुढ़िवादी मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया है जिसका प्रमाण उनकी 'ठाकुर का कुंआ', 'घासवाली', दूध का दाम' 'सद्गति' 'मन्दिर' 'मंत्र' तथा बावा का भोग' आदि कहानियां हैं। श्री ब्रजकुमार पाण्डेय ने दलित चेतना के सन्दर्भ में प्रेमचन्द का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि—'प्रेमचन्द द्वारा वर्णित हरिजन पात्रों और उनकी समस्याओं को हम दो

स्तरों पर देखते हैं—[1] सामाजिक स्तर और [2] आर्थिक स्तर। सामाजिक स्तर पर ये समस्याएं छूआ-छूत, मन्दिर प्रवेश निषेध, वेद-पाठ निषेध से जुड़ती हैं तो दूसरी ओर आर्थिक-स्तर पर खेत मजदूरों की समस्या से। महात्मा गांधी ने हरिजन समस्या को समाजिक समस्या के रूप में देखा था और उन्होंने उसका समाधान भी उसी स्तर से किया था। उन्होंने हरिजन आन्दोलन चलाया था। इस आन्दोलन की मूल प्रेरणा थी-शूद्रों के प्रति सवर्णों की दयावृत्ति को उकसाना। इसका एक तो यह परिणाम हुआ कि अर्थनीति के कारणों से सवर्णों के प्रति शूद्रों में जो घृणा, विद्वेषमय संघर्ष बढ़ रहा था, वह धीमा पड़ गया। यह आन्दोलन बुद्ध, महावीर और स्वामी रामानन्द से आगे जाने की प्रेरणा नहीं रखता था। उस आन्दोलन से शूद्रों को कुछ मन्दिरों में भरमने का आत्मसंतोष प्राप्त हुआ, पर अर्थनीतिक व्यवस्था के बदलने से इन आंदोलनों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। सामान्यतः समूह रूप में हरिजन गुलाम के आर्थिक पहलुओं को उजागर करते हैं और उस पर चोट करते हैं।'

प्रेमचन्दोत्तर कहानी विशेषकर नई कहानी मूलतः मध्यवर्गीय नगरीय जीवन के यथार्थ से जुड़ी रही है। इस कहानी का संसार मानव-मानव के बनते बिगड़ते सम्बन्धों और उनके बदलते मूल्यों की तलाश, परम्पराबोध और आधुनिकता की टकराहट, समाजिक-राजनीतिक गतिविधियों से उत्पन्न मानवीय विकृतियों को भोगे हुए यथार्थ के धरातल पर चित्रित करता है। इतना होते हुए भी दलित इन कथाकारों द्वारा नजर अन्दाज कर दिया गया। सातवें दशक की कहानी में भी दलित चेतना को उभारने का प्रयास नहीं किया गया। हिन्दी कथा साहित्य में दलित चेतना की अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से आठवां दशक महत्वपूर्ण है। श्री रमेश कुमार ने अपने लेख 'आधुनिक हिन्दी कहानियों में दलित-चेतना' में लिखा है कि-'आठवें दशक के समानान्तर कहानी आंदोलन के माध्यम से समाज के कमजोर वर्ग की समस्या को कहानी का केन्द्र बनाया गया। स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद भी निम्न दलित वर्ग का जीवन बद से बदतर होता चला गया है। ऐसी स्थिति में दलित उन्नायकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस वर्ग के जीवन का यथार्थ निरुपण किया है। इन कहानियों में दलित मानव की वेदना, निरन्तर संघर्ष करते रहने की अनिवार्यता, सुविधा-भोगी लोगों के प्रति उनकी विरोध मुद्रा, प्रतिकूल नारकीय स्थिति में भी जीवे की विवशता और अपने मानवीय अधिकारों की प्रगति हेतु आत्म-सजगता जागृत हुई है।'

इस आत्मसजगता का कारण वस्तुत: शूद्रों के प्रति सवर्णों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार है। खासकर गांव के पढ़े-लिखे हरिजन युवक को भी गाँव का सवर्ण असम्मान की दृष्टि से देखता है जिसके कारण वह गांव से पलायन करके शहर आ जाता है। यहां पर उसे केवल एक ही सुविधा है—आजीविका की। लेकिन यहां पर वह अपने सामाजिक परिवेश से कटकर जीने लगता है। अत: उसके सामने अपनी पहचान का संकट पैदा हो जाता है। फिर वह अपनी पहचान के लिए संघर्ष करता है। यह संघर्ष तीन धरातलों पर है—एक राजनीतिक, दूसरा आर्थिक तथा तीसरा साहित्यिक। संसद और विधान सभाओं में स्थान आरक्षित होने के कारण वह सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है। लेकिन इसके मूल में केवल व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं ही रही हैं। अम्बेदकर के बाद भारत की सांसद में सौ सवा सौ सांसद आरक्षित श्रेणी के सदैव ही रहे हैं, लेकिन देश भर में दलित की स्थिति में क्या परिवर्तन हुआ ? यही स्थिति प्रदेशों की विधान सभाओं की भी रही। यहां भी हमारे गूंगे-बहरे और अकर्मण्य प्रतिनिधि ही पहुंचाए जाते रहे। दूसरे आर्थिक धरातल पर भी संघर्ष हुआ। लेकिन जो दलित युवक पढ़-लिख कर नौकरी पा जाता है, वह अपने समाज से, जाति से कटकर जीने लगता है। एक तरह से वह दूसरा सवर्ण ही हो जाता है।

अस्मिता के लिए तीसरा और सबसे सशक्त संघर्ष साहित्यिक धरातल पर हुआ। क्योंकि जिस शूद्र के लिए शिक्षा प्राप्त करने का निषेध था, उसके लिए साहित्य में प्रवेश किस प्रकार सम्भव हो सकता था। वह साहित्य में आया भी तो गुलाम, दास या बन्धुआ की हैसियत से ही और यदि शूद्र स्त्री आयी तो केवल भोग्या, दासी या मजदूरिन की हैसियत से। इस स्वतन्त्रता के बाद पढ़-लिखकर साहित्य में आए दलितों ने भी कलम पकड़ी। उसका प्रारम्भ तो कविता से ही हुआ। धीरे-धीरे वह कहानी की ओर भी आए। दलित-चेतना की कथाओं के रूप में श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', शिव प्रसाद सिंह आदि ने एक पृष्ठभूमि प्रदान की और उस पर जिन दलित कथाकारों ने दलित-कथा का सृजन करने का प्रयास किया उनमें सर्वश्री ओम प्रकाश बाल्मीकि, पुरुषोत्तम सत्य-प्रेमी, मोहनदास नैमिशराय, दयानन्द बटोही, रघुनाथ प्यासा, शिवचन्द्र उमेश, काली चरण स्नेही, बी० एल० नय्यर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी कथाकारों की कहानियाँ परम्परा के विरोध की कहानियाँ हैं, जो परम्परा से पनपे संघर्ष फिर विरोध और अन्तत: उसे नकार देती हैं।

हिन्दी साहित्य में दलित पृष्ठभूमि पर कितने ही उपन्यास लिखे गए और कहानियां भी, लेकिन पहली बार दलित चेतना का प्रश्न प्रेमचन्द के सन्दर्भ में उठा, जिसने हिन्दी हल्कों में एक अच्छा खासा तूफान सा उठा दिया। जब कमलेश्वर ने सारिका के तथा डॉ० महीप सिंह ने 'संचेतना' के दलित साहित्य विशेषांक प्रकाशित किए थे, तो उस समय हिन्दी क्षेत्रों में जो प्रसंसा का भाव था, यह तूफान उससे बिल्कुल अलग तरह का था। एक तरह से आक्रामक-सा। सम्भवत: जब तक दलित चेतना मराठी आदी अन्य भाषाओं में अभिव्यक्त हो रही थी, ठीक थी, लेकिन जब हिन्दी में अभिव्यक्त पाने लगी तो हिन्दी वालों को अच्छा नहीं लगा। यही कारण है कि बड़े-बड़े नामवर आलोचक अभी तक भी हिन्दी में दलित-साहित्य की स्थिति से इन्कार करते हैं। दरअसल रमणिका गुप्ता द्वारा सम्पादित 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' ऐसे आलोचकों के लिए सशक्त जवाब है जिसमें हिन्दी के दलित तथा गैर-दलित कहानिकारों की दलित-चेतना की उन्नतीस कहानियां संकलित हैं।

इस पुस्तक को कहानियों से गुजरते हुए एक बात बहुत स्पष्ट होकर सामने आयी कि कुछ दलित कहानीकार ऐसे हैं, जिनके पास कथ्य की पकड़ और अभिव्यकित का शिल्प उत्कृष्ट कोटि का है, जो देर-सबेर हिन्दी कथा-साहित्य में निश्चय ही अपना स्थान बना लेंगे। इनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रेम कपाड़िया तथा विपिन बिहारी के नाम लिए जा सकते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' बड़ी सहजता से शिक्षा को शोषण से मुक्ति का साधन बताती है। एसी कहानी का मुख्य पात्र सुदीप जब अपनी पहली तनख्वाह के रुपयों को गिनकर अपने अशिक्षित पिता को समझाता है—पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं, सौ होते हैं, और जब वे समझ जाते हैं तो कह उठते हैं—"कीड़े पड़ेंगे, चौधरी···कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा।" सुदीप के पिताजी का यह आक्रोश ही मुक्ति का वह रास्ता है जो दलितों को शिक्षा की ओर ले जाएगा।

विपिन बिहारी की कहानी दलित औरतों के दैहिक शोषण को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। गांव के जमींदारों द्वारा दलित युवतियों की अस्मत से खेलना आम बात रही है। खेतिहर मजदूर लोकनाथ और नन्दकेसरी की बेटी लाजो के साथ कभी उसकी राजी से और कभी जबरदस्ती जमींदार पिता-पुत्र दोनों जवाहर बाबू और दशरथ सिंह सम्भोग करते हैं, लेकिन जब उसे गर्भ रह जाता है, तो दोनों में से कोई भी स्वीकार नहीं करता। अन्तत: लाजो अवैध बच्चे को

जन्म देती है और लाजो की मां जमींदार की बैठक पर जाकर बच्च को पिता-पुत्र के पैरों पर रख आती है। तथा लाजो के पूछने पर कि—"का हुआ, कहां गइल थी ?" नन्दकेसरी उत्तर देती है—"बेटा होयल था, ओकरे बाप के गौड़ में डाल आई। हमनी ही काहे लोक लज्जा झेलेंगे, तू भी झेल, हराम के पहचान कर।" नन्दकेसरी का यह साहस प्रेमचन्द की कहानी 'घासवाली' की मूलिया की बरबस याद दिला देता है।

दर असल दलित महिलाओं के यौन शोषण को लेकर दलित कहानीकारों द्वारा प्राय: कहानियां लिखी जाती रही हैं। इस संकलन में भी उनकी संख्या कम नहीं हैं। इन कहानियों में कावेरी की 'सुमंगली' रत्नकुमार सांभरिया की 'शर्त', शत्रुघ्न सिंह 'अनाम' की 'राम नाम सत्त है', कृष्ण गोपाल की 'छमिया' गुरुचरण सिंह की 'काली सड़क', सी० बी० भारती की 'भूख', मोहनदास नैमिशराय की 'अपना गांव', गौरीशंकर नागदंश की 'जंगल की आग' आदि प्रमुख है। लेकिन रमणिका गुप्ता की कहानी 'बहु जुठाई' इस कथ्य को एक नया आयाम प्रदान करती है। इस कहानी में आंचलिकता और विचार का अद्भुत समन्वय है, जो संगठन और विद्रोह का सन्देश देता है? इस कहानी को पढ़ते समय मेरे मस्तिष्क में दो प्रश्न एक साथ उठे। एक—दलित महिलाओं का यौन शोषण क्यों किया जाता है? दो—दलित और दलित-कथाकार दोनो ही दलितों पर लिखते समय दलित महिलाओं के यौन शोषण को ही क्यों चुनते हैं? किसी जाति की चेतना को तोड़ने का सबसे सहज तरीका उसकी महिलाओं के साथ बलात्कार करना है। उच्च-वर्ण दलितों की चेतना को तोडने के लिए सदियों से आजमाये जा रहे इस सिद्ध नुस्खे को आज भी आजमा रहा है। हमारे कथाकार इस मर्म बिन्दु पर चोट कर दलित चेतना को जगाने का काम कर रहे हैं। जैसे "बहु जुठाई" में रमणिका गुप्ता करती हैं। सदियों से चला आ रही अमानवीय परम्परा के विरोध में जब कुछ युवक खड़े होते हैं तो गांव के ही नहीं, आस-पास के गांवों के लोग भी संगठित हो जाते हैं और 'बहु-जुठाई' की परम्परा टूट जाती है। 'राम नाम सत्त है' की परबतिया के यौन शोषक मोहन सिंह की भी हत्या युवक कर देते हैं। दरअसल ये सभी शोषण से विद्रोह और अन्तत: उससे मुक्ति के संकेत हैं। कभी-कभी मुझे ऐसा भी लगता है कि कथाकार अपनी कहानी में रस उत्पन्न करने के लिए भी इस प्रकार के कथ्यों का चुनाव कर लेते हैं। जैसे विपिन बिहारी की कहानी 'पहचान' का यह अंश आप देखें —'लाजो से रोज उलझने लगे थे जवाहर बाबू! उसके लिए अलग से समय

निकालते थे वे। लाजो की छाती पर रोज हाथ फेरते थे और प्रसन्न होते थे। यदा-कदा छाती से उतर कर उनके हाथ लाजो की जांघ तक जुंबिश करते थे। लाजो ना समझा, मासूम कुछ समझ नहीं पा रही थी।

इस दौरान जवाहर बाबू ने लाजो के साथ कुछ ऐसा कर बैठने की कोशिश की थी, जिसकी कल्पना तक सम्भव न थी। वे लाजो के चेहरे के हाव-भाव देख रहे थे। कोई अतिरिक्त और आपत्तिजनक तकलीफ तो नहीं हो रही है। जब तक जवाहर बाबू ने लाजो के चेहरे पर अतिरिक्त तकलीफें नही देखी थीं, तब तक कोशिश करते रहे थे। जैसे ही लाजो के चेहरे पर अतिरिक्त तकलीफ' का बोध हुआ था, अपनी कोशिश छोड़ दी थी। लाजो को खूब पुचकारने लगे थे, लाड़ करने लगे थे। उसे पांच का नोट भी दिया था उन्होंने।

समझी जाने लगी लाजो कि वह जवान हो गई या होने वाली है। जवाहर बाबू अपनी कोशिश कई बार सफल कर चुके थे। उन्होंने कुछ ऐसा किया कि लाजो को अतिरिक्त तकलीफ नहीं हुई, बल्कि गुदगुदा रही थी। कौमार्य का रक्तस्राव नहीं हुआ था। लाजो समझने लगी कि उसके साथ क्या किया जाता रहा और क्या हुआ और उसे अब क्या करना चाहिए। तो जवाहर बाबू से उसकी जिद्द बढ़ गई थी और वे पूरी करने लगे।" (189-190) इस उद्धरण से ऐसा लगता है कि यह जान-बूझकर रसोत्पति के लिए सृजित किया गया है। हमारा मानना है कि दलित कथाकारों को ऐसी स्थितियों से बचना चाहिए, क्योंकि दलित कथा की शक्ति शिल्प में नहीं, सत्य में है।

दलित नेता और बुद्धिजीवी शेष सवर्ण समाज से बराबर यह बात कहते रहे हैं कि जब तक उनके साथ रोटी-बेटी का सम्बंध नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक असमानता का विष हिन्दू समाज से दूर नहीं होगा। लेकिन अन्तर्जातीय विवाह की कुछ छिटपुट घटनाएं घटती है, तो उन्हें न तो दलित समाज द्वारा ही सहजता से लिया जाता हैं और न ही सवर्णों द्वारा ही। इस मुद्दे को लेकर भी कई कहानियां लिखी गयी हैं। जैसे भगीरथ मेघवाल की 'सूरज कि चिता' की नायिका चन्दा देवी गांव के जमीदार ठाकुर की बेटी, जो अपने खेत मजदूर से प्यार करने लगती है और एक दिन उसे साथ लेकर दिल्ली भाग आती है। लेकिन उसके भाई एक दिन पता लगाते हुए उसके पास पहुँच कर उन दोनों को ठकुर साहब द्वारा माफ कर दिए जाने की बात कह कर गाँव लौटा लाते है और हवेली में सारे गाँव के सामने सूरज

को जलाकर मार दिया जाता है। गिरीराज अग्रवाल की कहानी 'अस्वीकृति' का नायक दलित युवक जब आई० ए० एस० होकर अपने ब्राह्मण गुरु जिनकी पुत्री नेहा, जो स्वयं विक्रम से प्यार करती है और उससे विवाह करना चाहती है जब विवाह करने के अनुमति चाहता है, तो गुरु जी के सारे आदर्श, और समानता की बातों का छद्म खुल जाता है। राणा प्रताप की कहानी "अन्ततः" इस सिक्के का दूसरा पहलू हमारे सम्मुख रखती है, कि जब एक ब्राह्मण शिक्षक मोहन मिसिर अपनी घरेलू नौकरानी फुलवा को पढ़ा लिखा देता है, और उससे परिवार के सदस्य की तरह व्यवहार करता है, लेकिन इससे फुलवा के बाप को मिसिर पर शक हो जाता है और वे उन पर फुलवा से विवाह करने का दबाव डालने लगते हैं। मिसिर चूंकि फूलवा से प्यार करता है अतः विवाह करने पर राजी हो जाता है। लेकिन चमार बिरादरी के लोग उस पर जाति बदलने को शर्त रख देते हैं। चन्द्रेश्वर कर्ण की कहानी "सुरंग से गुजरते हुए" भी इस समस्या पर केन्द्रित है। इस कहानी का नायक ठाकुर कलक्टर सिंह जब फुलिया भंगीन से विवाह करने का प्रस्ताव रखता है तो फुलिया कहती है- 'यही सोच रही हूं जमादार साहेब कि बात तो आप सत कह रहे हैं, लेकिन हमारी बिरादरी वाले मानेंगें कि उनकी जात-बिरादरी की कोई लड़की किसी दूसरी बिरादरी वाले के घर जाकर बैठ जाए? इसके लिए कलक्टर सिंह को फुलिया की सारी बिरादरी को सुअर और दारु की दावत देनी पड़ती है। इन सभी कहानियों से जो बात निकलकर आती है, वह यह कि जहां सवर्णों को अपने जातीय संस्कार बदलने होंगे वहीं, दलितों को भी इन संस्कारों से मुक्ति पानी होगी, तभी भारत में जाति-विहीन समाज की संरचना हो सकेगी।

दलित सन्दर्भों में आरक्षण पर निरन्तर बहस चलती रही है। फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि इस मुद्दे पर कहानी न लिखी जाए? इस संकलन में श्रवण कुमार की कहानी 'घब्बा' का नायक, जो एक बड़ा अधिकारी है, रेल में यात्रा करती हुई दलित महिला से पूछता है "क्या चमार हो?" और उसके हां कहने पर स्पष्ट कहता है-'मैं भी चमार हूं'! यह कहानी धीरे-धीरे जातीय हीनता से उबरते दलितों की ओर संकेत करती है। यही कारण है कि वह साथ बैठे लोगों जो आरक्षण के कारण हो रही हरिजनों की उन्नती से उत्तेजित हैं, को उत्तेजित होकर ही उत्तर देता है "शैड्यूल कास्ट का आप मतलब समझते हैं? इसका मतलब चूड़े-चमार से नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों से है, जिन्हें ऊपर

उठाने के लिए सरकार ने एक लिस्ट में शामिल कर लिया है। क्या लिस्ट में शामिल हो जाना ही अपने आप में एक गुनाह हो गया?" (पृष्ठ-179) यह कहानी ऊँच-नीच की सीढ़ीनुमा हिन्दू-व्यवस्था पर बराबर और गहरी चोट करती है, जहां पर कुछ जातीय संज्ञाएं गाली के रुप में प्रयुक्त की जाती हैं। 'घब्बा' कहानी का नरेटर कहता है—'क्यों लोग चमार को इतनी हिकारत से देखते हैं?" उसने मुझसे पिछले दिनों गांव की ओर बढ़ते हुए पुछा था - 'किसी को गाली देने के लिए भी उन्हें इससे बढ़िया शब्द नहीं मिलता।'

गरीबी दलित समाज का सबसे बड़ा कलंक है। आश्चर्य की बात यह है कि सबसे अधिक श्रम करने वाला वर्ग इस देश में सबसे अधिक निर्धन है। इस संकलन की कई कहानियां गरीबी के इस नासूर को उसकी पूरी बदसूरती के साथ उभारती हैं। इन कहानियों में पारसनाथ की "छितनुआ" और प्रेम कुमार मणि की 'जुगाड़' कहानियां उल्लेखनीय हैं।

दलित समाज में हो रहे आन्तरिक परिवर्तनों पर जिन कहानीकारों ने कहानियां लिखने का प्रयास किया है, कहना ना होगा कि वे अप्रत्याशित रुप से सफल हुए हैं। इन कथाकारों में प्रह्लाद चन्द्र दास, (लटकी हुई शर्त), कुसुम वियोगी (और वह पढ़ गई) जयप्रकाश कर्दम (चमार) तथा दयानन्द बटोही (सुरंग) का उल्लेख मैं विशेष रुप से करना चाहता हूं। ये कहानियां दलितों में उभर रही स्वाभिमान की भावना का स्पष्ट संकेत दे रही हैं। 'लटकी हुई शर्त' का गंगाराम चमार सवर्णों के यहां दावत खाने की एक शर्त रखता है कि उसकी जाति के लोग किसी दावत में तभी शामिल होंगे, जब उन्हें भी अन्य लोगों की तरह सम्मानपूर्वक भोजन कराया जाएगा। वह सवर्णों के यहां जाने और अपनी जूठन आप उठाने से रोकने के लिए अपनी जाति के लोगों के लिए दावत का आयोजन अपने घर करता है। "और वह पढ़ गई" की भंगी लड़की "चेतना" मल न उठाने की जिद्द करती हुई पढ़ने का प्रयास करती है तथा एक दिन पढ़ लिख कर शिक्षिका बन जाती है। दयानन्द बटोही की कहानी "सुरंग" का कथानक शिक्षा जगत की बदरंग छवि हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, कि किसी तरह एक दलित शोधार्थी को विश्वविद्यालय में शोध करने से रोका जाता है, क्योंकि यह वह रास्ता है, जो अच्छे जीवन की ओर जाता है। इसलिए इसमें सिद्धांत, विचार और योग्यता के कांटे बिछाए जाते हैं, ताकि उस पर चलने से पूर्व दलित छात्र लहुलुहान हो जाए। बटोही की यह कहानी एक

ऐसा सच है जो भोगकर लिखा गया है, इसलिए बहुत मारक है, यह पाठक को देर तक बेचैन किए रहता है ।

इस संकलन में कुछ दलित महिला कथाकारों की कहानियां भी संकलित हैं । उनमें कावेरी की 'सुमंगली', रजत रानी 'मीनू ' की 'सुनीता', तथा सुशीला टाकभौरे की "सिलिया" के नाम लिए जा सकते हैं । कावेरी की 'सुमंगली तो दैहिक शोषण और उससे विद्रोह की कथा है । तो रजत रानी 'मीनू' ने 'सुनीता' में उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री मायावती के जीवन की घटनाओं को कथा-सूत्र में पिरोने की असफल कोशिश की है ! हां सुशीला टाकभौरे की कहानी "सिलिया" अवश्य प्रभावित करती है । इस कहानी में अनुभव की व्यापकता और कथन का कौशल तो अपनी ओर खींचता ही है, नारी मन की भावनाओं को भी उन्होंने गहराई से जानकर चित्रित किया है । इस कहानी की नायिका सिलिया विद्रोही, समझदार तथा शिक्षित दलित युवती है, जो अपनी सम्पूर्ण जातीय स्थिति पर विचार करती है । सुशीला टाकभौरे के ही शब्दों में सिलिया सोचती है "हम क्या इतने लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी कुछ अहं भाव है। उन्हें हमारी जरुरत है । हमको उनकी जरुरत नहीं । हम उनके भरोसे क्यों रहें। अपना सम्मान हम खुद बढ़ाएंगे ।" सिलिया ने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया—"मैं बहुत आगे तक पढ़ाई करूंगी, पढ़ती रहूंगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊंगी । उन सभी परम्पराओं का भी पता लगाऊँगी जिन्होंने हमें अछूत बना दिया है । वह विद्या-बुद्धि और विवेक से अपने आप को ऊंचा, और सार्थक करके रहेगी । वह किसी के सामने झुकेगी नहीं, न ही अपमान सहेगी ।

हिन्दी दलित कहानी में दलित समाज में हो रहे परिवर्तनों की आहट बहुत साफ सुनाई दे रही हैं । चाहे वह व्यक्ति के भीतर हो रहे हों या बाहर ! दलित कहानी का प्रभाव सच की बेखौफ अभिव्यक्ति में है, जिसके लिए बहुत साहस कि आवश्यकता है । दलित कथाकारों में यह साहस है, यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है । दलित कहानी का भविष्य बहुत उज्वल हैं, उसके क्षेत्र विस्तार की बहुत सम्भावनाएं हैं । इसे पाठकों की भी कमी नहीं होगी, लेकिन इसके लिए दलित कथाकारों को अपने दायित्व को बखूबी समझना और निभाना होगा । उन्हें अपने सामाजिक सरोकारों को समझना होगा । भविष्य में यही दलित कहानी के जीवन स्रोत होंगे ।

☐ अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, देवबन्द
सहारनपुर – 247554 (उ० प्र०)

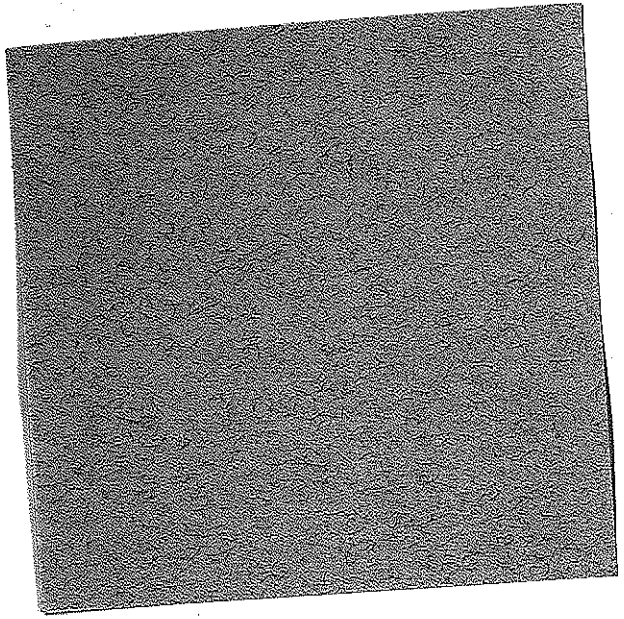

दूसरी दुनिया का यथार्थ

□ कमलिका गुप्ता

परिचय :

हिन्दी की जानीमानी कवयित्री एवं कथाकार ।

जन्म : 22 अप्रैल, 1930 ।

शिक्षा : एम. ए., बी. एड. ।

प्रकाशन : गीत-अगीत, अब और तब, खूंटे, आम आदमी के लिए, पूर्वांचल–एक कविता यात्रा, प्रकृति युद्धरत है, कैसे करोगे बंटवारा इतिहास का (सभी कविता संग्रह), राष्ट्रीय एकता और विघटन के बीज, असम नरसंहार–एक रपट (लेख) । हंस, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मानुषी, नया-पथ, उद्भावना, कादम्बिनी, आजकल, भाषा, उत्तरार्द्ध, उत्तरा, प्रखर, प्रसंग सहित देश की विभिन्न पत्रिकाओं में कहानी, कविता, लेख आदि प्रकाशित ।
पंजाबी, बंगला एवं अंग्रेजी में रचनाएं अनूदित ।

संपादन : रोशनी की लकीरें, आखिरी दशक की लम्बी कविताएं दो खण्डों में आधुनिक महिला लेखन (कविता संग्रह), आधुनिक महिला लेखन, (कहानी संग्रह) समकालीन कहानियां (कहानी संग्रह), बोनेक बोल (खोरठा कविता), नया मिजाज (गजल संग्रह) युद्धरत आम आदमी-त्रैमासिक पत्रिका का पिछले आठ वर्षों से सम्पादन ।

विविध : छोटानागपुर के मजदूरों, विस्थापितों, आदिवासियों के अधिकारों के लिए सतत् संघर्षरत । महिलाओं और दलितों की जानी-मानी पक्षधर एवं मजदूर नेता ।
वर्ष 1975, 84 88, 93 एवं 94 में क्रमशः मेक्सिको/बर्लिन, रूस, युगोस्लाविया, फिलीपाइन तथा क्यूबा में भारत का प्रतिनिधित्व । भारत में पूर्वांचल की साहित्यिक यात्रा एवं विदेश-यूरोप, अमेरिका, कनाडा, जापान, थाईलैंड, हांगकांग, नार्वे, स्वीडन, इंगलैण्ड की यात्रा।

सम्मान : डॉ० अम्बेडकर–राष्ट्रीय–अस्मितादर्शी–साहित्य अकादमी, उज्जैन (म० प्र०) द्वारा महात्मा ज्योतिराव फुले विद्यावाचस्पति से अलंकृत्त । अखिल भारतीय कला संस्कृति साहित्य परिषद् मथुरा (उ० प्र०) द्वारा साहित्यसरस्वती सम्मानोपाधि तथा भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा 1995 में अम्बेदकर फेलोशिप ।

सम्प्रति : महासचिव कोलफील्ड लेबर यूनियन एवं अखिल भारतीय कोल वर्क्स फेडरेशन की उपाध्यक्षा तथा संयोजिका, कामकाजी महिला, बिहार राज्य जनवादी लेखक संघ की केन्द्रीय परिषद् की सदस्या एवं बिहार इकाई की संयुक्त सचिव, सी. पी. आई. (एम) राज्य कमिटी की सदस्या, बिहार विधान सभा एवं परिषद् की पूर्व सदस्या ।

सम्पर्क : नवलेखन प्रकाशन, मेन रोड, हजारीबाग—825301 (बिहार) ।

आत्मकथ्य

बहु-जुठाई कहानी के पीछे शोषण का एक युग—एक इतिहास छिपा है । छोटानागपुर की वादियों में जब मैं कोयला खदानों के ठेकेदारों से संघर्ष में जुटी थी तो साथ ही जंगल तथा खेतिहर मजदूरों के सवालों पर भी जूझा करती थी । एक पौआ 'खेसारी' के सत्तू पर खटने वाली खेतिहर मजदूरों की भूमिहीन जमात् अधिकांश दलित ही थी । उसमें भी दलितों में दलित भुइयां, मुसहर, घासी, पासी । उन दिनों हजारीबाग, भारत में क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से सबसे बड़ा जिला था । गिरिडीह, बेरमो, गोमिया, चतरा आदि सब इसी जिले में थे । तब चतरा विधान सभा क्षेत्र अनुसूचित जाति के लिए सुरक्षित नहीं था चूँकि भुइयां जाति को जो गया में मुसहर कहलाती थी अनुसूचित जाति करार नहीं किया गया था । वह पिछड़ी में रखी गई थी । बाद में सन् 1975-76 में मैंने इन्हें अनुसूचित जाति करार करवाया । राजा रामगढ़ जो इलाके के राजा थे, वे थे तो एक आदिवासी वंश से, पर उन्होंने अपने को क्षत्रिय घोषित करवा लिया था । उनके वंशज प्रतापपुर में उनके नुमाईंदे थे जो चुनाव भी वहीं से लड़ते थे । राजा साहब ने अपनी एक पार्टी जनता पार्टी के नाम से बना ली थी । चतरा, प्रतापपुर, हंटरगंज पहुंचना ही दुःसाध्य कार्य था । न सड़क, न पुल । एक मात्र हजारीबाग-चतरा और चतरा-डोभी रोड थी । गांवों के अन्दर जंगल विभाग की मोरम सड़कों और पगडंडियों के रास्ते थे जो बरसात में बंद हो जाते थे । उस इलाके में जमीन, जंगल, पेड़ और पूरी की पूरी यह दलित भूमिहीन जमात् अपनी औरतों और बच्चों के साथ उन जमींदारों की बंधुआ थी । चाहे जैसे वे उसका उपभोग करें । इन जमींदारों के कारिंदे पठान, कायस्थ या साहू भी होते थे । ये कारिन्दे कहीं-कहीं पर स्वयं भी जमीन्दार थे । आतंक का ऐसा स्वरूप था कि मजाल है इनकी मर्जी के खिलाफ कोई महुआ चुन ले—कोई बच्चा रो दे—कोई ब्याह कर लाई औरत को बिना इन्हें

चढ़ाये स्वयं भोग ले। यानि ऐसा आतंक कि उन्हीं के शब्दों में वहां पूर्ण शान्ति थी। कोई बोलता ही नहीं था। सन् 1970 में एक चुनाव में मुझे वहां जाने का मौका मिला था। तब यह सब देखा-सुना। उन्हीं दिनों बहु-जुठाई की सच्चाई मेरे सामने उजागर हुई थी, जिसके चिन्ह प्रतापपुर, हंटरगंज के इलाके में जगह-जगह बिखरे हुए हैं। बाद के दिनों में एक सहदेव यादव उभरा जिसने दलित–पिछड़े समाज की जागृति का आन्दोलन शुरू किया बाद में श्री यादव की हत्या इन जमींदारों ने कर दी थी। फिर तो उस परिवार के कई सदस्य लगातार मारे गये।

आश्चर्य यह कि वहां औरतें जमींदार द्वारा जुठाया जाना सौभाग्य मानती थीं। इस कथा की कोई नायिका तो नहीं है। पूरी जमात ही नायक है। पर उस जमात् में से भाभी टाईप की नायिकाओं को भी बाद में बाबू साहबों के बेटों ने झोपड़ों से निकालना शुरू किया और उनके घर जलवा दिये। इसके लिए भी हमें आंदोलन करना पड़ा। एक जूठी बहू के बेटे ने तो कोर्ट में 'जारज' पिता से लड़कर जायदाद में हिस्सा भी ले लिया। मैं उन बेटों को 'जारज' नहीं मानती चूंकि वे एक सत्य थे। ये पिता ही 'जारज' थे जो सत्य को स्वीकारते नहीं थे।

ये घटनाएं मुझे कई वर्षों से अन्दर ही अन्दर कचोटती रहीं थीं। एक दिन जब सहदेव यादव का तीसरा भाई मारे जाने के बाद, उसका चौथा भाई जो विकलांग है, बन्दूक के पहरे में तीनों विधवा भाभियों के साथ मुझसे मिलने आया तो वे यादें फिर से हरी हो गईं, तब यह कहानी लिखी गई। आज वहां सनलाईट सेना और नक्सलाइट में युद्ध है। आतंक के साये में जीता यह परिवार इस बात से संतुष्ट है कि उनकी कुर्बानियां उनकी जमात् को जगाने के कार्य में अकारथ नहीं गईं। यह कहानी भी मैं सहदेव यादव और उस भुंइनी 'भाभी' को समर्पित करती हूं जो सन् 75 में घर जलाये जाने के बाद मेरे पास आई थी। मैं ने स्वयं हस्तक्षेप कर प्रशासन की सहायता से उसका घर बनवा दिया था, पर इस घटना ने जहाँ उस इलाके में बड़े लोगों के मन में प्रतिशोध की भावना को जन्म दिया वहीं गरीब जमात को भी एकजुट होकर अन्याय के खिलाफ बोलने का साहस दिया था और संघर्ष शुरू हो गया। इस कहानी की प्रेरणा 'भाभी' जैसी नायिका से मिली जो उस शोषण की पूरी तरह शिकार थी पर बाद में उसके खिलाफ तन कर खड़ी हो गई थी।

□ रमणिका गुप्ता

बहू-जुठाई

आज सुबह टोली में ढोलक जोर-जोर से बज रही थी। पिपही की आवाज भी बीच-बीच में ढोलक की धमक को चीर-चीर देती थी। एक-एक कर लोग राधू के चबूतरे पर जमा हो रहे थे। बराती सर पर फेंटा बांधे, कमर में धोती कसे चले आ रहे थे। माधो के सर पर पाग थी। सेहरे के नाम पर परास के फूल खोंस दिये थे। उसकी काली लटें गर्दन पर झूल रही थीं, झालर-सी। मसें भींग रही थीं। मां छाती पर हाथ धरे बरात जल्दी जाने के लिए मन ही मन मन्नत मना रही थी।

राधू का मंझला बेटा माधो। दो बरस से गौना करवाने की कोशिश में लगा है राधू पर कोई न कोई बाधा आ खड़ी होती थी, कि गौना रुक जाता था। अब तक तो बहू आ गई होती। दुई-दुई निकोनी-दुई-दुई रोपनी कटनी में शामिल होयके कमाय के धरे लायल भी होती कुछे तो। एक-आध बाल बुतरू के बाप बन गयल होते माधो। पर का कहिये। जब माधो का ब्याह भइले, तबे कोऊ एसन-एसन सवाल नाय उठाय रहले। अब गौना के बख्त आइते-आइते तो जुगे बदल गेल कोऊ इस गांव में बेये नाय देबे के चाही। ई ससुर बिरसा के बेटवा भी तो भाईंग के ससुराल में बस गेल हय। बिदायगियो नाय करले के तैयार भईल उकर ससुर। बड़ी मुश्किल से तैयार करले माधो के ससुर के। ऊकर बेटा भी कॉलेज पढ़े हय। कौनो पर विश्वास नखो करत। सोच-सोच कर राधू अस्थिर हो उठा।

'अपन गांव में तो केकरो से कहना सुनना बेकार हय। केकरा पर विश्वास कर-अय। सभी की बहू तो ठाकुर जुठालय है, और सभे के माय, ठाकुर साहब के बाप। राधू मन ही मन सोचते बुद-बुदाया— 'कोऊ में दम न हय'। तभी पहल-वानों के साथ ठाकुर साहब का बराहिल नेग लेकर आ गया। पूरे पांच रुपये के चमचम करते सिक्कों की माला भेजी है ठाकुर साहब ने दुल्हा के लिए। 'लगे हैं इस बार दुल्हिन के चांदी-चढ़ौते ठाकुर साहब। मुहल्ले की बहुएं सोच-सोच कर मन मसोस कर रह जा रही थीं। उनके भाग में चांदी न थीं। पीतल से ही काम चला लिया था ठाकुर साहब ने 'पर तब ठाकुर जवान हले, अब तो बूढ़ हो गेले'। यह सोच कर संतोषकर रही थी वह सब, कि उनको जवान ठाकुर ने जुठाया था भले पीतल ही मिला। नौजवानों का दल अन्दर ही अन्दर उबल रहा था। पर बोल नहीं पा रहा था। बोलने का रिवाज नहीं था इस गांव में। माधो के बड़े भाई की फजीहत देख सब सहम गये थे।

राधू राह तक रहा था बराती जुटने की। यह माधो का गौना था। गौने में दुल्हन ससुराल में रहने आती है। ब्याह से अधिक रीति-रिवाज निभाने पड़ते हैं। असल खर्च तो इसी समय करना पड़ता है लड़के वाले को। दुल्हन के कपड़ों के साथ-साथ दुल्हन के मां-बाप, भाई-बहन और भौजाई तक के कपड़े देने पड़ते हैं। फिर बराती-सराती दोनों का खर्च लड़के वाले का। कमाने वाली बहू जो घर में आती है खर्च तो लगेगा ही।

'ये कोई बाबू साहिबन के घर की बहू नाय हय जे बस खाय और पहरे खातिर आवो है तबे तो अपना पीन्धे-ओढ़े खातर आपन पीहर से लावो है- माधो की मां बतिया रही थी कि कैसे करजा करके बहू को लाना पड़ रहा है।

राधू का गांव प्रतापपुर प्रखण्ड मे पड़ता है जो चतरा सब डिवीजन में है। उन दिनों यहां दिन में सड़क पार करने में डर लगता था। जंगल मे घुसना कठिन था। हजारीबाग जिला का यह छोर गया से सटा है। इस छोर पर नीलाजन बहती है। दूसरा छोर रामगढ़-गोला है। दामोदर बहती है। जैसी नदियां वैसे ही लोग हैं। या जैसे लोग वैसी नदियां हैं। बौखलाती हुई उफनती हुई पेड़ों को तोड़ कर, पत्थरों को ठेल भागती हुई, लाल-लाल खपरों के झोंपड़ों के झुण्डों के बीच, जन समूह की कतारों के बीच। लोग भी वैसे ही उत्साही। बात-बात पर भड़कने वाले। नीलाजन पहाड़ से निकल कर एक दम हंटरगंज के मैदान में इतना फैल जाती है कि जल से अधिक जबर बालू हो जाता है। जल विहीन, निर्जला-सी शान्त बहती है नीलाजन नदी। यहां के लोग भी दबे-दबे जल की तरह। बालू जैसे बलवान हैं जमींदार सब, जिन्होंने दबोच रखा है सबको। सर उठाया तो चढ़ बैठे। हवा वहां भी बालू का ही साथ देती है। आधा कोस पाड़ है नीलाजन का। पर पानी कहीं-कहीं ही दिखता है। घने जंगल में गांव भी तो कहीं-कहीं ही हैं। जहां हैं वहां किलेनुमा जमींदार की कोठी, हवेली या किले की दीवारों के साये में बसे हैं,—भयभीत झोंपड़े। इन किलों, हवेलियों, दालानों को इन्हीं भुइयां-मुसहरों ने बनाया है, दीवारों को चिना है—नीवों को कोड़ा है, खलिहानों को भरा है। 'कोड़ो' (महुए का बीज) चुन-चुन कर तेल पिराया है, पीछे के पीपे गोदाम के धरे हैं। पर थकी देह पर या उलझे बालों में लगाने को कभी नहीं मिला तेल। बिना तेल जटा-जूट बन जाते हैं उनकी औरतों के बाल।

इन घाटियों, पहाड़ों की दोल में बसा है प्रतापपुर और हंटरगंज प्रखण्ड। राजा साहब के भतीजे की जमींदारी में था वह इलाका। अब कागजों में तो नहीं है, पर जमीन पर उन्हीं का कब्जा बरकरार है।

राधू सोच-सोच कर कभी उदास हो जाता है, कभी माथे पे चिन्ता की रेखा-खिंच जाती है, तो कभी गुस्से से मुट्ठी भिंच जाती। पता नहीं क्या होगा इस बार। बरात जल्दी जाए पहले इसकी चिन्ता ले वह उठा और चिल्लाया।

'चलो-चलो, जल्दी चलो। ढेर रात हो गेले, जनावर का खतरा हो जैते। सूरज ढले से पहिले पहुंचे के है। सभे बाट जोहते। लोक तो एसने ई गांव के कौनो अपन बेटी देय के तैयार नाय है। चल बेटा चल। डोली में बैठ, 'उसने माधो को पकड़ कर डोली में बैठाते हुए कहा। कहार डोली उठा कर चलने लगे। इधर दूल्हा भी डोली में चढ़ कर जाता है।

रात में देर गये बरात मुकुन्द भुइयां के घर लगी। मुकुन्द कोलियरी में काम करता था, इसलिए दुनिया को ज्यादा जानता था बेटा राजू भी कालेज में पढ़ने लगा। मुकुन्द की मेहरारु भी धनबाद में ठेकेदारी में ही खटती थी। जब खदानें सरकारी हुईं तो दोनों जनी-मरद सरकारी हो गए। गया के हीबाबू साहब की ठेकेदारी चलती थी बर्ड कम्पनी में। अब वह भी अपना नाम मुंशी में चढ़वा लिए तो सरकार की खदान में हाजरी बाबू बन गए। बेटी फुलमतिया का ब्याह माधो के साथ बचपन में ही हो गया था जब कोलियरी सरकारी नहीं थी। बेटी का गौना करने के लिए ही गांव आया था। मुकुन्द का झोपड़ा राधू से अच्छा है। रहन-सहन और धोती की क्वालिटी में भी फरक आ गया है। राधू की धोती अभी 'ठियोने' (घुटने) से ऊपर है। मुकुन्द की धोती पांव छूती है मुकुन्द के।

सबेरे ही बारात विदा करनी है। रात भर में सब नेग' पूरा होता है। औरतें नेग पूरा करने में लगी हैं। दूल्हा को अन्दर ले गई हैं दलान में। समधी को गरियाने के गीतों की बौछार में फूटती हंसी के अंकुर छहराए जा रहे थे घर-आंगन में। भोर होते-होते विदाई के गीतों की धुन से घर-बार रूआंसा हो गया। पर पता नहीं क्यों मरदों में कुछ खुसर-फुसर चल रही है। मुकुन्द कुछ कहना चाहता है। वह बार-बार जनवासे वाले आंगन में जा-जा कर लौट जाता है। घर पिछवाड़े लड़कों की जमात जमी है। भुइयां टोली में चमार, दुसाध और यादव टोले के नौजवान भी जुटे हैं। एक आध कोयरी, नउवा, साव जी के लड़के भी पहुंच गए हैं। भोर हो गई। राधू इन्तजार में है कि मुकुन्द आ कर बिदायगी की सूचना दे। रश्म-रिवाज, नेग सब तो पूरे हो गए हैं। दोपहर से पहले बरात वापिस गांव पहुंच जाय तो ठीक होगा। धूप में किसी को परेशानी नहीं होगी। पर कोई आ ही नहीं रहा। आखिर राधू ने ही पूछ लिया 'का देर है समधी भाई?' घर पर चुप्पी का सन्नाटा तना था। जैसे किसी ने तोड़ दिया। औरतों की सतत आवाज के बावजूद तना एक सन्नाटा।

तिलक-दहेज की प्रथा तो है नहीं इन लोगों की बिरादरी में। उल्टे लड़के वाले ही को देना पड़ता है लड़की के बाप को खर्चा, एक कमाऊ हाथ घर से ले जाने का। कोई बड़े घर की ब्राह्मण, बनिया या बाबू साहब की लड़की थोड़े ही है, जो खा पी के शृंगार कर सज-धज के बैठी रहे हाथ पे हाथ धरे। इसे तो पहले बाप के, फिर ससुर के घर खटना ही है। मेहनत है चाहे जो करा ले। बाप-भाई या ससुर-मर्द।

राधू ने सफाई देते हुए कहा—'अभी जितना जुटल-जुगाड़ होले, ले आयल है समधी भाई। अबकी कटनी में कमी पूरी कर देब। तोर बेटी के पैजाब जरुर किन (खरीद) देब'। 'एसन कोऊ बात न है समधी भाई। असल में तू जाने है जे हमर बेटा भी जवान हो गेले, कॉलेज में पढ़े है। पुरानी-सुरानी बात में उकरा कोऊ विश्वास नखे। तोर गांव के कुछ रिवाजे ऐसन है कि लड़की विदा करे की सोच के करेजा फटे लगत है। बड़ा करेजा करे पड़ते हमनी के, तब विदायगी होते। ठाकुर साहब के यहां आपन बेटी के कलेवा बनावे खातर कैसे भेजबे? पूछ रहल है राजू हमर बेटवा। बोन (बहिन) के तभे विदा करबे जब तोहनी सब गछबे, कि उकर बोन बहिन) फुलमतिया के बोला आपन घर उतारबे, ठाकुर साहब के द्वार पर नाय।' मुकुन्द ने खुलासा करते हुए कहा।' हां चाचा ई बात के फैसला पहिले हेन्हे ही करे होते। देख चचा हमर बोन फुलमतिया का बियाह तोर बेटवा संग भयले है ठाकुर संग नाया। ओहे संग हम विदा भी करबे आपन बोन, पर उकर रछा तोहनी नाय कर सकब तो अभीये बोल। ठाकुर साहब के जुठाय खातर नाय भेजबे हम आपन फुलमतिया। हम आपन घरे में रख लेब माधो के भी घर जमाई बनाय के। बोल चचा हमर शर्त मंजूर हय के नाय।

राधू को तो मानो सांप सूंघ गया। 'ठाकुर साहब के खिलाफ बोले वाला कौनो पैदा होले आज हूं इस युग में बिटवा। हमरे घर सेई आवाज उठते ई तो कौनो जिन्दा न रहब होन्हे। पानी में रै कर मगर संग बैर कैसन करबे बचवा? ई हमर घर से का, हमर समूचे गांवों से न हो सकता है। जे रिवाज पुरखन से चल रहल हय चले दे। हमनी सब तो ठाकुरों के जूठन हय। उन्हीं की जमीन, उन्हीं के जूठा खाना खाय के पलत हैं, उन्हीं के जुठाई महरारु हम घर में रख सकत हैं, एही लिखल है हमर भाग में। जमींदारी कै गढ़ है प्रतापपुर बचवा। एक बेचारा सहदेव यादव है जे कुछ बोले हैं हमनी के तरफ से। गांवा के लोग उकरा साथ देते, तब न? कई बार कह चुकल है एहीं बात, जे तू कह रहल है आइज। हमर बड़ बेटा एही गम में पागल हो के जंगल भाईग गेल। अब जिद नाय कर

बचवा, जाये दे। बहिन के बिदा कराय दे। 'राधू ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—'नहीजैते हमर बोन' राधू चिल्लाया—' अब हमनी खाली हाथ घुरबे तो बी हमनी सब के घर उजड़ जैते बचवा। तोर घर आन के डोला उठाय के ले जाब ऊ सब जालिम लोग। बड़े जबर हुई ऊ सब। पांच-पांच नाल बंदूक है उनकर ठिने। तोर बोन के बीच चौक में मुजरा कराय देब कुंवर साहिब तो, जदी आज नाय जाब। कोठे पर बिठाय देलके है कई छोरियन के। इह बेर माफ नाय करबे हमनी के ठाकुर साहिब। देखा, हमर बड़ बेटा के घर उजड़ गेलय, ऐसन ही इन्कार करे पर। हमर बड़ बहू के अब ओहे लोग रख लेलके। माँझल बेटा घर बसे दे बचवा। 'राधू हाथ जोड़ते हुए बोला।

राजू के साथी जुट रहे थे। किसी ने जाकर माधो को राजू की सब बात बता दी थी। माधो के मन में हलचल मच गयी थी। भय भी था, पर विद्रोह भी फटना चाह रहा था। माधो एक-दो बार शहर हो आया था। बाबू जीवन सिंह के साथ केदला कोलियरी भी गया था। माण्डू क्षेत्र से जीवन सिंह के दूर के भाई राजा पार्टी के टिकट पर एम. एल. ए. हुए थे। इस बार यूनियन का जोर बढ़ रहा था वहां। बड़ी मुश्किल से जीते थे बाबू साहब।

ठेकेदार लोग मजदूर तो अपने गांवों से ले जाते थे, पर इस डर से कि उन्हें भी कहीं यूनियन की हवा न लग जाय, उनको वे धौड़ा [मजदूरों के झोंपड़े] से बाहर निकलने ही नहीं देते थे। मजदूरों को डराने-धमकाने के लिए आरा, छपरा, औरंगाबाद से मंगा कर पहलवान रख रखे थे सब ठेकेदारों ने। सभी मजदूर जीवन बाबू के गांव के ही भुइयां मुसहर थे। जो ठेकेदार देता उसी में खुश थे। गाँव से तो कुछ ज्यादा ही मिलता था वहां उनकी। हफ्ता में राशन-पानी, चाय-चीनी का काट-कूट के, आठ आना हाथ में मिल जाता था नगद। नगदी तो कभी वो गांव में छुए तक न थे। एक बार यूनियन वाले अड़ गए थे। एकता है उन सब में। जीवन सिंह को भी पैसा बढ़ाना पड़ा था अपने मजदूरों का, भले ही उनके मजदूर हड़ताल नहीं किए थे। उन्हें बिन लड़े ही पैसा मिल गया था। पर एक बार ज्यादा पैसा मिल जाय तो अब कौन कम लेता? रोज गरियाता था जीवन बाबू 'सरवन के गांवा जाय के देख लेब।' याद कर माधो मुस्कुराया।

'पर का देख लेब? का बिगाड़ सके है गांवा में कुछो किकरा, जीवन बाबू? कोऊ हमर जमीन है? गाय-गोरू है? कां छीन लेते ऊ? होन्हें तो कम-से-कम हफ्ता राशन-पानी और नगदी पैसे मिल जाता रहे। ऐही खातर ते गाँवा से भाइग-भाइग के जनी-मर्द सब कोलवरी में जा रहल है हमहूं फुलमतिया के ले के चल जाब।'

माधो सोच कर मुस्काया। वह जान गया है शहर जाकर, किअब राजा साहब का राज नहीं है। अब तो खदानें भी उनके हाथ से चली गयी थीं। केदला की राजा–खदान पर सरकार ने अपना हाकिम बैठा दिया था तभी सब ठेकेदारों की नाक में दम कर दिया है रेणुका जी की यूनियन ने। वह जानता है कि चतरा से एक बार कोयरी जीत चुका है। गया में एक भुंइनी भी एम. एल. ए. बनी थी। सोशलिस्ट पार्टी के कर्पूरी ठाकुर मुख्य मन्त्री बने थे।

'हमरीये ऐसन गरीब मुख्य मंत्री बन गेले रहल। नऊआ ठाकुर रहले ऊ। जजमानी करके पेट पाले वाला। ई तो राजा साहब और कांग्रेस के सब ठाकुर, भुईयार, बामन, लाला, जमींदार, सेठ मिल के गिरा देलके उकरा राज। खरीद लेलके सब आदिवासी, हरिजन, एम. एल. ए. के। नहीं तो हमनी सबके भी भाग बदल जैते। हमर बड़ भाई, भाभी के गम में नाय पगलैते।'

एक-एक घटना चलचित्र की तरह नाचने लगी उसकी आंखों के सामने। वह देख रहा था यादों के परदे पर जब बड़ी भाभी को ठाकुर साहब डोला उतार कर ले गए थे, तो कैसे बुक्का पाड़ को रोया रहा उसका बड़ा भाई। रात भर 'सूते' [सो] नहीं सका था वो। कभी मुट्ठी बांधता रहा, कभी भींचता रहा, कभी खोलता रहा था। फिर भाभी के घर लौटने के पहिले ही घर से भाग गया था। कई दिन बाद घर लौटा था भाई, तो खूब रोयी थी भाभी उसे देख कर। भाई ने कसम खायी थी कि भाभी को लेकर भाग जायगा वह गांव से बाहर। वह रात दोनों साथ ही बिताये थे। बितने प्रेम से बतियाता था बड़ा भाई। भाई ने अगले दिन उसे ठाकुर साहब के घर जाने से मना कर दिया था। यादों का परदा भी काँप गया था ठाकुर के गुस्से की याद कर। ओह! कितना गुस्सा हो गए थे ठाकुर साहब। उसके 'बप्पा' को ही भेज के पूरे गांव के लोगों को जमा करया था। भाई को पकड़वा कर मंगवाया। भाभी को झोंटा से पकड़ के खींचता-खींचता ऐसे ले गया जैसे द्रोपदी को दुःसासन। वहीं भाभी को नाचने गाने को हुक्म दे दिया। उसका तो शर्म के मारे मर जाने को मन करने लगा। वह साफ देख रहा था यादों के बाइस्कोप के झरोखे से जब उसका 'बप्पा' हाथ जोड़-जोड़ कर गुहार पाड़ रहा था। पर कोई सुनने वाला हो तब न? भाई जंगल में भाग गया। कोई कहता है वह साधु बन गया, पुलिस कहती है डकैत बन गया, पर सहदेव जी कहते हैं वह नक्सलाइट बन गया। अब पुलिस भी डरती है उससे। ठीक ही है जो भाग गया वह। इस गुलामी से तो अच्छा ही हुआ। माधो मन ही मन सारी घटनाओं को दुहरा-दुहरा भोग रहा था। उसका मन हुआ कि बप्पा से कहे

है कि ठीक ही तो कह रहा है राजू। उसकी ब्याहता उसके संग रहेगी। ठाकुर साहिब कौन होते हैं उसको ले जाने वाले? अपनी ब्याहता को दूसरे हाथ में नहीं सौंपेगा वह, अपने ही हाथ से। पहिले उन सभी की मांओं को जुठाने के लिए ले जाते रहे थे वह। अब भाभी को तो वही लोग रख लिए हैं। घर भी नहीं आने देते हैं उसे। अभी शुकर है गांव की 'छोरियन' को नहीं ले जाते हैं ठाकुर साहब। उन्हें शक है कि 'छोरियन' में कोई उनकी अपनी औलाद न हो, उनका अपना खून न हो, उनके अपने बीरज' से पैदा। पर कोई सुन्दर 'छोरी' हो तो ठाकुर साहब के बराहिल से नहीं बच सकती। वह कुंवर तो अपनी बहिन के साथ भी 'सूते' से नहीं डरता। घर में घुस के छेड़खानी करता है 'बहु-बेटियन' के संग। कम से कम ठाकुर साहब ऐसा नहीं करते थे कभी भी। अब तो इस गांव की 'छोरियन' को भी छिनाल बना दिया है उन सबने। किसी को सुरखी, किसी को पाउडर किसी को लिफिस्टिक ला के देते हैं। अब सब फिदा हो गई है उन 'सरवन' (सालों) पर। गांव के किसी 'छोंड़े (लड़के) को गदानती ही नहीं कोई। सबे अपने को 'ठाकुर' की बेटी समझती है। माधो का मन कसैला सा हो गया। वह तो अपनी फुलमतिया को अपने ही सुरखी-पाउडर ला देगा। माधो ने मन ही मन निश्चय किया।

राजू की चिल्लाहट ने उसकी तन्द्रा तोड़ी। गाँव की पंचायत बैठी। बराती-सराती सब बैठे। गांव के मुखिया–सरपंच भी आ गये। फैसला हुआ– यह मुकुन्दा की बेटी को सवाल नाय, पूरे गांव की इज्जत का सवाल हय। फुलमतिया मुकुन्द की ही बेटी नाय हय पूरे गांव की बेटी हय। हमनी सब की इज्जत का सवाल हय। फुलमतिया का डोला ठाकुर साहब के द्वारे नाय, राधू के द्वारा लगतै। जरुरत पड़ते तो हमनी सब ई गाँव के लोग भी मदद करबे। हमनी सब डोली के संग जाबि फुलमतिया के ससुराल।'

'लाठी चलते तो कौनो नाय टिकते होन्हे। हमनी सब तो जिन्दगी भर बैल हेंकौले रहल छड़ी से, कुदाली से माटी कोड़त रहल, एकाध गैंता भले होते पूरे गांव में। हंसिया जरुर रख ले जनी सब, जे कटनी खातर ठाकुर साहब दे देलके हय।'

राधू ऐसे बोल रहा था जैसे लाठी-तलवार लिए डाकुओं से घिरा कोई निहत्था राही हो। उसे एक बन्दूक की नली सीधे अपने सीने पर तनी नजर आ रही थी, दूसरी नली माधो पर, और फुलमतिया का, झोंटा बराहिल के हाथ में। 'गैंता, हंसुआ, कुदाल कम होत है की? दुसाध टोली की लाठी भी साथ जायब।' 'हमर टोली के जवान भी तैयार है।' कई आवाजों ने ललकार कर कहा।

अरे तो जादवों कौनों पीछे रहब। बेटी तो हमरे गांव की भी हय।' दूसरा चिल्लाया—।

चमर टोली, दुसाध-टोली के लोग जो मनुवादी व्यवस्था में बड़ जात होते हैं मुसहरों से, जिनका उनसे बेटी-रोटी का आपस का रिश्ता भी नहीं होता। वो पानी नहीं पीते उनके यहां, आज बेटी की इज्जत की लड़ाई में सब साथ देने को तैयार हो गये।

'आखिर हम गरीबन की भी तो कोई इज्जत है। इनकर बहू-बेटी के इज्जत हैं हमनी के बहू बेटी कौनो चीज में कम हैं उनकर (उन) से एक घने (घन) तो नाय है हमरी माय-बहन पास-बस। फट पड़ा एल नौजवान।

'जगल में लाठी की कौनो कमी ना है चचा' दूसरे ने राधू को दिलासा दिलाया।

'बन्दूक है बन्दूक' राधू बोला।

'ठीक है। अभिये (अभी ही) एक आदमी भेज देते हैं सहदेव के पास। गाँव के सीमाने पर आन मिलेगा, आपन बन्दूक के साथ। एक दुनाली ऊ भी रखते हय।' मुखिया जी बोले। बारात आइज के नाय, काल [कल] के जायब। हजारीबाग रेणुका जी इहां भी खबर भीजवाय देब, उहां के पानी के काबू कर लेबे ऊ। तब ठाकुर साहब के पैसा चाईट [चाट] के दुम नाय हिलाय सकवे चोट्टा थानेदार, सरपंच ने सुझाया।

राधू सोच में पड़ा। था। इधर बिरादरी का डर, जग-हंसाई की फिकर उधर ठाकुर साहब का भय, उसके बराहिलों का आतंक। कुंवर का गुस्सा याद कर के तो वह कांप ही गया। बड़ी बहु के साथ किया कुकर्म-चल-चित्र की तरह घूम गया उसकी नजर के सामने भी। 'पूरा गांव देखत रह गेल, कोई कुछो नाय बोलले। अब तो ओ लोग बड़ी बहू के आवे ही नाय देत हय। ड्योढ़ी के बाहर सामने की जमीन पर छप्पर छान के बसा देलके है होन्हे ही। जब जी चाहे तब ठाकुर साहब बुला भेजते हैं। कोई बोले वाला नाय है टोले-मुहल्ले में। अब बड़ी बहू भी न जाने कौन-सा बैर सधाए खातर इतरा-इतरा कर चलत हय गांव में। नइकी-नइकी साड़ी पींध [पहन] दिखाती घूमे हय। पूरे गांव के, टोले-मुहल्ले के गरियाती फिरो हय। मुंहलगी 'रखनी' जे बन गेल हय ऊ ठाकुर साहब के। एक खेत भी दे देलके हय ठाकुर साहब उकरा के।'

राधू की नजरों के सामने एक के बाद एक चित्र आता। तो फिर सोच में डूब जाता। ई 'कुंवर के कबी पटले [पटाव] नाय ठाकुर साहब के सेंग।

कुंवर काला-कलूटा हले। न माय पर गैल है, न बाप पर। रानी साहिबा के तो आपन बाप के पैसे का बड़ा घमण्ड हय। ठाकुर साहब तो अब उनकरे पास आय-जाय के ही छोड़ दैल हय। बड़ी बहू के झोंपड़ै में पड़े रहत है। बस दो बखत के खाने के दायीदार भर हय वे हवेली में जाय के। बाकी रहना सोना, पानी-खाना, सब तो बड़ी बहू के संगे होत हय। एसने तो सुख से रह रहले है बहू होन्हे अब।' एक क्षण को राधू के मन में आया कि कह दे कि क्यों वह सब गाँव की शांति भंग करने पर तुले हैं। विरोध करके भी क्या हुआ? बड़े बेटे की बहू भी गई। अब वह चली गई तो वहां सुखी तो है। यह इज्जत उसे क्या देगी?' पर यह बात कह नहीं पाया वह। माधो का चेहरा देख कर चुप रह गया।

'मान ले बप्पा! राजू की शर्त्त मान ले।' माधो रूआंसा हो कर बोला। उसे लगा उसका बाप कमजोर पड़ रहा है। माधो के आगे फुलमतिया का डरा सहमा आंसू भरा चेहरा घूमने लगा। कभी उनका हंसता-चेहरा बड़ी भाभी केचेहरे में बदल जाता—डाल से तोड़ कर फेंका गया फूल। फिर वह चेहरा मां के चेहरे में बदल जाता – बूढ़ी मां का झुर्रियों से भरा चेहरा, मसला हुआ काला पड़ गया फूल। अतीत माधो को आंतकित कर रहा था। भविष्य भयभीत और वर्तमान अस्थिर, दुविधा-ग्रस्त।

आखिर विदायगी हुई। गांव के लड़के भी देशी पिस्तौल बनाने लगे थे। दो चार साथ में ले ली। चुपचाप लौट रही थी बारात डोली लेकर। न ढोल, न पिपही। कभी-कभी बच्चे के रोने की आवाज़ सन्नाटा तोड़ती थी या गांव के छोर से कुत्तों की। इतनी बड़ी बरात किसकी लौट रही है, कौतूहल वश अगल-बगल के गांव के लोग देखने निकले। खबर आग की तरह फैल गई। एक नदी ही तो है दोनों जिलों के बीच में। हजारीबाग के जंगलों में गया का मैदान पहुंच रहा था। बंजर धरती पर जीवट से जीने वाले लोग, हरी-हरी अलसायी धरती पर जमा हो रहे थे। हरियाली कांप रही थी भय की हवा से। पर कंकरीली जमीन हौसला न हार रही थी, हवा उसका कुछ बिगाड़ न पा रही थी।

कहारों ने डोली राधू के घर के सामने रोकी। गगन में सूरज सुरख हो रहा था। पतों से छनती उसकी लालिमा ने फुलमतिया को आशीष दी और फुसफुसाई 'उतरो बहू अपने घर में जाओ।' डूबता हुआ सूरज, राधू के मन में उतर गया था। वह उसके पेट में पहुंच बोल रहा था। 'बहू को घर ले जाओ राधू।' 'राधू ने डोली से पर्दा उठाया। सास ने बहू का घूंघट उठा कर कहा—(क्या सुन्दर है रे माधो तेरी बहुरिया)।' राधू ने बहू का घूंघटउठा कहा—क्या

सुन्दर है रे माधो तेरी बहूरिया।' राधू ने डूबते सूरज को अपने अंक में भर लिया था मानो। उसने भय को दबोचते हुए कहारों को कहा—'डोली धर दे।'

डोली धरने की बात ठाकुर साहब को कहनी थी। डोली तो उनके द्वार पर लगती थी। इस बार अनहोनी हो गयी। डोली लिए कहार उसी के द्वार पर खड़े थे। पूरे गांव में एक चुप्पी, एक सन्नाटा। कनखियों से बतिया रहे थे लोग। मुंह से बोली तो नहीं फूट रही थी पर कुछ था जो डट गया था। मन? दिमाग? शायद दोनों।

आदतवश राधू भी बाट जोह रहा था, शायद कोई आकर उसे टोकेगा-गरजेगा उस पर। सो आना था जिसे वह आया। वह गरजा-'क्यों बे राधू', क्या उल्टा दस्तूर चलाता है। डोला यहां क्यों लाया है रे। ठाकुर साहब के द्वार पर सब नेग तैयार है बहू जुठाई खातर। काहे देर करत हो।'

राधू चुप! मूड़ी गड़ाए बैठा रहा। माधो से न रहा गया। वह फुलमतिया को उतारने के लिए बढ़ा ही था कि पहलवान की लाठी माधो और फुलमतिया के बीच तन गई।

'नहीं उतरेगी बहू यहां। चलो डोली ले चलो ठाकुर साहब के द्वारी पर' पहलवानों ने गरज कर कहारों को निर्देश दिया। कहार डोली उठा कर चलने को हुए तो फुलमतिया का भाई गरजा—'नहीं जायेगी डोली ठाकुर के यहां। जिससे ब्याही है डोली उसी के द्वार लगेगी।' माधो समेत गांव के नौजवान चिल्लाये—'नहीं जायेगी डोली।' पूरा जंगल हाथ हिला कर बोला-'नहीं जायेगी डोली, नहीं जायेगी डोली।' सूरज की लाल रोशनी पूरी की पूरी समा गयी इन नौजवानों की आंखों में। एक साथ कई-कई सूरज लाल-लाल चमक उठे, इनकी पुतलियों में।

ऐसी आवाज की आदत न थी वहां किसी को भी। वहाँ की गलियों, रास्तों, सड़कों और खेतों की धूल ने पांवों से लिपटना ही सीखा था, सर पर चढ़ना नहीं। यहां के नालों में, नदियों में बाढ़ नहीं आती। वह सूखना जानती है। बस इसलिए वह सूख जाती है। सिमट जाती है। यहां हवा भी आजाद होकर नहीं घूम सकती। वह जंगलों में भटक जाती है, उलझ जाती है। यहां के बच्चे बूढ़े, मर्द-औरत, यहां तक कि गाय-गोरू और जानवर भी उनके आवाज के इस तेवर से-अन्दाज से परिचित न थे। वह सब स्वयं भी अपनी आवाज सुन भौंचक हो गये थे। कैसे निकले उनके मुंह से यह शब्द 'नहीं जायेगी डोली?' वह तो—'जो हुकम हुजूर' कहना ही सीखे थे बस। एक नया अहसास था यह। आवाज अपनी 'टनक' सुन कर हैरान हो रही थी! क्या उन्हें बोलना आ गया? क्या उनके

भाग्य ने भी पलट खाया? ठाकुर साहब की सी बोली में वे भी बोल सकते हैं क्या? यह तो अनहोनी है। चमत्कार है! और फिर तो वह दुहराने लगे बार-बार अपना कहा—'डोली नहीं जायेगी, ठाकुर साहब के यहां नहीं जायेगी डोली।' सप्तम स्वर साक्षात उतर आया था उनकी नरेटी (गले) में।

आज प्रतिरोध, नारा बन कर गूंज रहा था। डर टूटा था, भय का मिथक उनकी आवाज की तरावट से भसका था। एक परम्परा टूटी थी गुलामी की। सदियों पुरानी शृंखला टूटी थी। हवा भी आजाद होकर बहने लगी थी, और धूल आसमान छूने की तैयारी में लगी थी।

शुरू में इस आवाज को सुन कुछ लोग भागने लगे थे। पर कुछ ठिठक गये थे। जो ठिठके थे, वो सर उठा कर सोचने लगे थे। जो सोचने लगे थे वो तर्क कर रहे थे—'आखिर बात तो ठीक कह रहे हैं यह। क्यों हम लोग ठीक और गलत का फैसला ठाकुर साहब की कचहरी, पहलवानों की लाठी पर छोड़ देते रहे हैं आज तक?' वह मन ही मन अपने से पूछने लगे थे। वह भी शामिल हो गये आवाजों के उस कोरस में। कोरस गूंज रहा था। किसी ढोल, किसी मान्दर को मात दे रहा था। वो भागे थे वे भी अब वापिस आ गये थे। गूंज अब गरज बन रही थी। और गरज खूंखार हो ही जाया करती है।

हैरान होने की बारी अब पहलवानों की थी। हड़बड़ा कर एक पहलवान फुलमतिया को पकड़ने के लिए बढ़ा। माधो रोक नहीं पाया अपने को। वह बड़े भाई की तरह मैदान छोड़ कर नहीं भागेगा। वह रोएगा भी नहीं। वह फुलमतिया को 'भाभी' नहीं बनने देगा। न वह उसे अपनी 'माँ' की जिन्दगी दुहराने देगा। उसने लाठी का एक वार दे मारा पहलवान पर। फुलमतिया को घर में घुसा कर किवाड़ बन्दकर दिया और जवाबी हमले के इन्तजार में ही था कि ताबड़-तोड़ लाठी चलने लगी। फुलमतिया के मायके की दुसाध, चमार, यादव, कोयरी सभी की लाठी आज भिड़ गई थी, बाबुओं की लाठी से। यह एकता की लाठी थी। जबर थी। 'कोनो' स्वार्थ या राजनीति की लाठी न थी। बाकी सभी गाँवों के लोग, जो जमा थे, ललकार कर साथ दे रहे थे, राधू का माधो और राजू का। एकता की मजबूत मुट्ठी पकड़े थी इस लाठी को। इसलिए जब बरसती थी यह लाठी तो 'सटाक-सटाक' जबान भी चलाती थी।

इसी बीच सहदेव यादव भी दुनाली बन्दूक लेकर पहुंच गये। भुइयां टोली के मुसहरों की, सदियों से भार तले दबी, जड़ हुई संवेदना जगी थी। पत्थर बनी संवेदना आज अहल्या सी उठ बैठी थी, पर उसके लिए उसे किसी राम के पांवों की जरूरत नहीं पड़ी थी।

बस बुद्ध की तरह उसके अपने भीतर से एक ज्ञान हो गया था। उन्हें मुहम्मद की तरह शायद इलहाम हुआ हो। इलहाम कि वह आदमी हैं, गुलाम नहीं। सभी बराबर हैं। ज्ञान, कि वह भाग्य के बन्धुआ नहीं, किसी पिछले जन्म का फल भी नहीं हैं। कि उनकी आवाज में, उनके हाथों में, वैसी ही ताकत है जैसी ठाकुर साहब के या उनके बराहिलों की आवाज या हाथों में है। यह कि वह भी उनके बराबर हैं--उससे भी ज्यादा अच्छी लाठी चला सकते हैं। यह कि उनकी बहू-बेटी की भी वही इज्जत है जो ठाकुर साहब की बहू-बेटी की है। यह कि वह भी इन्सान हैं। उन्हीं सब की तरह।

इस ज्ञान, इस इलहाम के बाद भुइयां टोली के मुसहरों को कौन गुलाम रख सकता था? उनका दिमाग खुल गया था। वह जान गये थे कि उन्हें आज तक गुलाम बना कर रखा गया था। यह कि उनकी गुलामी भाग्य का फल है यह सच नहीं, बल्कि एक साजिश थी।' एक बहुत बड़ा झूठ था यह। राधू के आंसू थम नहीं रहे थे। वह भय से मुक्ति के आंसू थे, खुशी के आंसू। उसने केवल भय जाना था। दुःख भी वह नहीं जानता था चूंकि सुख का स्वाद चखा नहीं था कभी। आज उसने सुख को चीन्ह लिया था। इन्सान बनने का सुख महसूस किया था। सुख-सुख! हां--उसने आज सुख भोगा था। इन्सान बन कर जीना कितना सुखकर लग रहा था उसे। वह भी खड़ा हो गया तन कर पूरा इन्सान बन कर।

इतनी जुट कर डटी हुई लाठियों के आगे, सौ पहलवान भी होते तो क्या करते? पहलवान भाग कर हवेली की ड्योढ़ी में गये। गुस्से से आग बबूला हो गये ठाकुर साहब। कुंवर का गुस्सा तो ऐसे ही सातवें आसमान पर रहता था। पांचों नाल बन्दूक निकल आई। तब तक सहदेव यादव ने अपने गांव खबर भेज दी। अब तो अगल बगल के गांव में खबर फैल गई। ठाकुर साहब का गांव युद्ध-स्थल बन गया। डोली राधू के द्वार पर रखी थी। फुलमतिया घर के अन्दर थी, अपनी सास के साथ। पूरा गांव द्वार छेक कर, घेर कर बैठ गया था। ठाकुर साहब आयेंगे ही सब जानते थे।

थाना को भी खबर हो गयी। इधर से ठाकुर साहब आ ही रहे थे कि थानेदार भी जीप में आ पहुंचा। अगल-बगल के गांवों के मुखिया और मानिन्द आदमी जमा हो रहे थे। सवाल था किस कानून के तहत बहु-जुठाई की रस्म चालू रखी जायेगी? न थानेदार के पास जवाब था, न मुखिया या सरपंच के पास। समूचे गांव वाले, पूरे के पूरे लोग गांव छोड़कर जाने को तैयार थे। 'रहें ठाकुर

साहब अकेले ही आपन हवेली में, पर डोला नहीं जायेगा बहू का उनके घर।' अड़िग था गांव।

मरने-मारने को तैयार इतनी बड़ी जमात एक तरफ, मारने पर उतारू पहलवानों की छोटी पर सजी-धजी, पूरी तरह हरबे-हथियार से लैश जमात दूसरी तरफ। वार के लिए दोनों तैयार। माधो ने ललकारते हुए कहा--'चलावा गोली ठाकुर साहब। ले आपन करेजा ठण्डा कर लेब। हमनी सो मरबे पर याद रखियो, तोहनी सब में से एको के जिन्दा न लौटे देब।' राजू ने अपनी देशी की नाल कुंवर साहब की तरफ कर दी। पहलवान ठाकुर साहब का मुंह ताक रहे थे। क्या आदेश देते हैं। थानेदार भी अकबका गया था। उसमें दम नहीं था कि राजू को पकड़ ले। गोली चलेगी तो जवाबदेह तो वही होगा। फिर हजारीबाग से भी वायरलेस आ चुका था।

ठाकुर साहब सोच में पड़ गये--थानेदार की नौकरी पर आंच आएगी तो साला पलट जायेगा। फिर कल खेतों का क्या होगा? इतने कमियां कहां से पावेंगे, 'क्या सोचा आपने ठाकुर साहब' सहदेव ने पूछा? 'समय के साथ चलिए। अब पुरानी चाल छोड़िये। वह युग बीत गया। अब इनके मुंह में भी जबान आ गई है। ज्यादा जुल्म करीयेगा तो बन्दूक भी आ जायेगी। अभी तो लाठी ही देख रहे हैं आप। अपने दुश्मन पैदा मत कीजिये। कल से खेत में हल नहीं जोतेगा कोई। न कोई बेगारी खटेगा अब वह बन्धुआ नहीं रहे आपके। सूद-मूल दोनों ही वसूल चुके हैं आप। इनकी मां-बहन बहू-बेटी अब इनकी अपनी है। वह सूद नहीं है अब आपके मूल की। सोच लीजिये। खबर हजारीबाग भी जा चुकी है।' सहदेव ने ताकीद की।

थानेदार ने आंखों ही आंखों में ठाकुर साहब को समय की नजाकत के बारे में समझाया। ठाकुर साहब लौट पड़े चुपचाप। कुंवर कहता गया 'ठीक है आज नहीं तो कल सबक सिखायेंगे।'

माधो कुछ कहने ही जा रहा था कि उसका बड़ा भाई भीड़ को चीरता हुआ कहीं से आ गया। 'हम भी सबक सिखाना सीख गए हैं कुंवर। कल की बात कल देखेंगे।' माधो का भाई जोर से हंसा। पूरा गांव ठट्ठा कर हंस दिया।

गोया पहली बार उस रात हवेली का दरवाजा दहला, उसकी दीवारें कांपी। रात भर मुंडेर पर चौकीदार ने अगोरा। पहली बार शायद कोई मुंडेर टूट कर गिरी, जिसे गांव भर ने देखा।

राधू की आंखों से झरती बूंदों की झड़ी में, भीतर से आती फुलमतिया की हंसी, झिलमिला रही थी। □